मुद्रक और प्रकाशक
जीवणजी डाह्याभाओ देसाओ
नवजीवन मुद्रणालय, अहमदाबाद – १४

पहली आवृत्ति, ३०००

डेढ़ रुपया मार्च, १९५६

निवेदन

अिस सग्रहकी तैयारीसे लेकर प्रकाशित होने तक जो कुछ भी मेहनत करनी पडी है अुसका सारा श्रेय श्री रमणीकलाल मोदीको है। मै जब गूजरात विद्यापीठमें महामात्र था, तबसे आज तक शिक्षा-सम्बन्धी जो भी लेख मैंने लिखे है अुनका संग्रह करके श्री मोदीने अुन्हे दो भागोमें बांटा है। अुनमें से अेक है 'शिक्षामें विवेक'। अिसे 'तालीमकी बुनियादें' का अनुग्रंथ कहा जा सकता है। अिसमें अुन्ही लेखोका सग्रह किया गया है, जो आज भी पढने और विचार करने योग्य मालूम हुअे है। जो लेख आज अप्रासगिक मालूम हो सकते है वे निकाल दिये गये है। छपनेके पहले अिस सग्रहको मै देख गया हू। और देखने-देखते कुछ लेखोके मैंने शीर्षक बदले है, और कुछमें जहा विचारोकी पुनरावृत्ति मालूम हुअी अुतना हिस्सा निकाल दिया तथा घटा-बढाकर अुन्हें अेकमें मिला दिया है। कही कही भाषा भी सुधारी है। अिसके सिवा अिस पुस्तकके लिअे मैंने नया कुछ भी नही लिखा है।

दूसरी पुस्तकको 'शिक्षाका विकास' नाम दिया है। अुसमें भी पुराने लेख ही रहेगे। लेकिन वे बुनियादी शिक्षाके सम्बन्धमें है। गाधीजीके साथ कोचरब (अहमदाबाद) तथा साबरमती आश्रममें काम करते-करते वर्धा पहुचने तक किस प्रकार धीरे-धीरे वर्धा-योजनाके सिद्धान्तोका विकास हुआ, वह अिस पुस्तकमें देखा जा सकता है। अिस सम्बन्धमें विशेष जानकारी अिस पुस्तकके प्रकाशित होने पर दूगा।

वर्धा, १०-१२-१९४९ — कि० घ० मशरूवाला

अनुक्रमणिका

निवेदन ३

पहला भाग : तत्त्व-विवेक

१. शिक्षाका दर्शन ३
२. अुच्च शिक्षा १८
३. राष्ट्रीय शिक्षा ४५
४. शिक्षा पर राज्यका अंकुश ५०
५. 'विशारद' का अध्ययन ५९
६. मनुष्यताकी, प्रतिष्ठाकी और निर्वाहकी शिक्षा ६१
७. शिक्षणमें भावनाओंका विकास ७०
८. विनय बनाम दृढ़ता और स्वातंत्र्य-वृत्ति ७४
९. तारतम्य-बुद्धि ७६
१० बुद्धि किस प्रकार विकसित हो? ८२

दूसरा भाग : प्रवृत्ति-विवेक

१ स्कूलोंके वार्षिक सम्मेलन ९३
२ आदर्श आचार्य १००
३ कुछ हरिजन छात्रालय १०३
४. बालकोंके नृत्य और नाटक १०७
५ अितिहासकी शिक्षामें यथार्थताकी मात्रा ११२
६. 'पगदंडी' की प्रस्तावना १२०

तीसरा भाग : प्रश्न-चर्चा

१. विविध प्रश्न १२७
२. विद्यार्थी जीवनकी दुरवस्था १३५
३. बन्धा या विकास? १३८
४. अुद्योग या शरीरश्रम? १४१
५. धार्मिक शिक्षणकी दृष्टि १४२
६. वर्ग-विग्रह बनाम अहिंसा १४४
७ स्वतंत्रता और नियमन १४७
८ संस्कारी और असंस्कारी बालकोंका सहवास १५०

शिक्षामें विवेक

पहला भाग

तत्त्व-विवेक

१

शिक्षाका दर्शन*

१

आचार्य जैक्सकी ख्याति तो मैंने सुनी थी, लेकिन अुनकी कोअी रचना नही पढी थी। 'शिक्षण अने साहित्य' (शिक्षण और साहित्य) मासिकके अेक अकमें 'फुरसदनु शास्त्र अने कळा' (फुरसतका शास्त्र और कला) नामके अिस पुस्तकके अेक प्रकरणका अनुवाद मैंने पढा। वह मुझे विचारप्रेरक मालूम हुआ और पसन्द आया। अिससे अिस लेखककी दूसरी रचनायें भी प्रकाशित करनेकी मैंने सपादक महोदयसे प्रार्थना की। अुत्तरमें अुन्होने लिखा कि आचार्य जैक्सकी दो पुस्तकोका अनुवाद श्री गोपालदास पटेल तैयार कर रहे हैं। अुनमें से अेक पुस्तक है 'सर्वोदयनी जीवनकळा' (सर्वोदयकी जीवन-कला) और दूसरी यह पुस्तक। मेरी अुस प्रार्थनाके परिणामस्वरूप अिस पुस्तककी भूमिका लिखनेका भार भी मेरे ही सिर डाल दिया गया।

अिस पुस्तकका विषय तो 'शिक्षा' है, परतु अिससे अैसा नही समझना चाहिये कि यह केवल शिक्षकोंके लिअे बनाअी गअी कोअी पाठ्यपुस्तक है। यह जितनी अध्यापकोंके लिअे है, अुतनी ही, बल्कि अुससे ज्यादा, साधारण मनुष्योंके लिअे है। क्योकि अुनकी रायमें "शिक्षा कोअी अैसी प्रवृत्ति नही है, जिसे पैसे लेकर काम करनेवाले धधेदार लोग चलाते हैं और जिसकी नीरस गुनगुनाहट स्कूल-कॉलेजोकी

* 'मनुष्यनी सर्वांगीण केळवणी' (मनुष्यकी सर्वांगीण शिक्षा) नामक गुजराती पुस्तककी प्रस्तावना।

 1257

दीवारोंके बीच चला करती है;" बल्कि वह तो अैसी "प्रधान प्रवृत्ति है जिसे सारे समाजको अपनाना चाहिये।" "हर नागरिकसे अुसका खास संबंध है, और वह (शिक्षा) भी कुछ समय तक चलनेवाली नहीं, बल्कि जीवनभर व्याप्त रहनेवाली। अुसका क्षेत्र विश्वव्यापी होगा। वह आदिसे अन्त तक मनुष्यका सर्वांगीण निर्माण करनेका प्रयत्न करेगी; तथा अुसका ध्येय संपूर्ण ज्ञानको मानव-कुशलतामें परिणत करनेका और सामाजिक प्रवृत्तिके प्रत्येक विभागमें अुत्तमताकी अुपासनामें लगानेका होगा।" (पृ० १३-१४) वर्धा-योजनाकी परिभाषामें कहूं तो हर अुद्योगका तीन तरहसे विचार किया जा सकता है. शिक्षाके माध्यमके रूपमें, जीविकाके साधनके रूपमें और कलाके रूपमें — अर्थात् आत्म-विकास और आत्म-तृप्तिके साधनके रूपमें। अुदाहरणके लिअे, कताअी और खेतीको सभी बालकोंकी बुनियादी शिक्षाका माध्यम बनाया जा सकता है; अपने अुदर-निर्वाहके लिअे बालक भले कोअी दूसरा अुद्योग करनेवाला हो या करता हो; और आत्म-विकास तथा आत्म-तृप्तिके लिअे कोअी तीसरी ही प्रवृत्ति करे; जैसे, चित्रकारी। अिसी तरह मनुष्य राज या डॉक्टरीका धंधा निर्वाहके साधनके रूपमें कर सकता है, परंतु वह बुनियादी शिक्षाका माध्यम बनाया जा सके या न भी बनाया जा सके और अुससे आत्म-विकास तथा आत्म-तृप्ति हो या न भी हो। आचार्य जैक्सके विचारके अनुसार शिक्षा मनुष्यके जन्मसे मृत्युपर्यन्त निरन्तर चलनेवाली प्रवृत्ति है, जो अुसे आत्म-विकास और आत्म-तृप्तिके लिअे करते रहना चाहिये, जो अुसकी बुनियादी शिक्षाके और जीविकाके अुद्योगमें भी व्याप्त है और अुन अुद्योगोंके बाहर भी व्याप्त है। "अिस प्रकारकी व्यापक कल्पनामें शिक्षा तो . . (हर मनुष्यका) धंधा ही बन जाती है। . . . अिस प्रकार जब शिक्षा स्कूल-कॉलेजकी चीज मिटकर सामाजिक चीज बन जाती है, तभी वह युद्धके अेवजके रूपमें पेश की जा सकती है; तभी वह अैसी चीज बन सकती है, जिसके खातिर

मरना अुचित माना जायगा और अिसलिअे जिसके खातिर जीना भी योग्य कहा जायगा।" (पृ० १४)

यह 'शिक्षा' कौनसी है? हम सब 'शिक्षा, शिक्षा' का शोर तो मचाते हैं और 'हमारे देशके शिक्षामे पिछडे हुअे' होनेका रोना रोते हैं। 'अनिवार्य शिक्षा', 'प्राथमिक शिक्षा', 'प्रौढ शिक्षा', 'अुच्च शिक्षा', 'बुनियादी शिक्षा', 'राष्ट्रीय शिक्षा', 'सांस्कृतिक शिक्षा', 'धार्मिक शिक्षा', 'औद्योगिक शिक्षा', 'व्यापारिक शिक्षा', 'व्यावहारिक शिक्षा' आदि नामो और भेदोंके जरिये हम शिक्षाका तेजीसे प्रचार करनेकी लालसा रखते है और अुसके लिअे प्रयत्न करते हैं। फिर भी यदि यह कहा जाय कि शिक्षाके ठीक-ठीक अर्थके बारेमें तथा अुसे देनेकी पद्धतिके बारेमें अभी हमारे मत और दृष्टि स्पष्ट नही है, तो अनुचित नही होगा। यह स्थिति कोअी हमारे ही देशकी नही है। जो राष्ट्र सभ्यताके शिखर पर पहुचे हुअे माने जाते है और जिन्होने शत प्रतिशत निरक्षरता दूर कर दी है, अुनकी भी यही स्थिति है।

मनुष्य ध्येयो और आशाओंके साथ जन्म लेता है और अुन्हे क्रम-क्रमसे सिद्ध करनेके अुपाय और साधन जुटाता है। अुन साधनोंमें 'शिक्षा' को भी अेक आवश्यक अुपाय मानकर वह अुसके पीछे पडता है। वह शिक्षा अुसे अपनी आशाओको बढाती और अुनका पोषण करती हुअी मालूम होती है, तथा आरंभमे अुन्हे सफल करती या करनेका मार्ग बतलाती हुअी मालूम होती है। परन्तु बादमें यह अनुभव होने लगता है कि आशायें तो बढी है, ध्येय भी कुछ अधिक स्पष्ट या विकसित हुअे है, लेकिन अुन्हें सिद्ध करनेका कोअी रास्ता दिखाअी नही देता। अुसकी अपनी और दूसरोकी आशाओ और ध्येयोंके बीच कोअी मेल नही बैठता। अुसके ध्येयो और आशाओको दूसरे तोडते हैं और दूसरोंके ध्येयों और आशाओको वह खुद तोडता है। अथवा, अेकका ध्येय दूसरेकी पीठ पर सवार होकर ही सिद्ध किया जा सकता है। और हर मनुष्यमें जीवनके अंतिम समयमें किसी न किसी विषयमे

या तो 'मनकी मन ही माहि रही' का भाव पैदा होता है या जीवन व्यर्थ बीतता हुआ मालूम होता है। अुसे जीवनका कोअी अुपयोग नही मालूम होता। अिसका परिणाम यह होता है कि जगत् अुसे नन्दनवन जैसा नही, वल्कि हिंसक पशुओंसे भरा हुआ, वार-वार दावानलसे सुलग अुठनेवाला अथवा मारवाडकी मरुभूमि जैसा वीरान लगता है। लाखोमें अेकाधको ही जीवनके अन्तमें वह सफल हुआ लगता है, और करोडोमें अेकाध मनुष्यको ही यह अनुभव होता है कि समग्र जीवन सफलताके साथ अुत्तरोत्तर व्रढती हुअी सीढियों जैसा है।

जव अैसा होता है तो वह फिरसे विचारमें पड़ता है और अपनी भूलको ढूढनेका प्रयत्न करता है। और आखिरमें हमेशा वह अिसी निर्णय पर आता है कि भूल 'वर्तमान शिक्षा' में ही है; अर्थात्, शिक्षाके अभावमें है या गलत शिक्षामें है। फिर वह शिक्षा-पद्धतिको वदलनेका प्रयत्न करता है। अिस प्रकार दुनियामें शिक्षाकी अनेक पद्धतिया पैदा हुअी हैं। किन्तु अभी तक जीवनको सफल करनेवाली शिक्षाका पता नही लग पाया है।

तव स्वाभाविक ही यह शका अुठती है कि पढ-पढकर भी मनुष्य तेलीके वैलकी तरह जहाका तहां क्यो रहता है? जीवनके अनेक वर्ष विविध विद्यायें सीखने और प्राप्त करनेमें लगाने पर भी परिणाम शून्य क्यों दिखाअी देता है? अूपर अूपरकी तो वहुतसी वाते दीखती है, लेकिन तत्त्वकी वात क्यो नही दिखाअी देती?

युगोंसे अिस प्रश्न पर विचार होता आ रहा है। अिसी विचारसे विविध दर्शन और तत्त्वज्ञान पैदा हुअे है। अुसीमें से अनेक प्रकारकी राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्थायें पैदा हुअी है और हो रही है। अुसीमें से वार-वार क्रान्तिकारी अुथल-पुथल और भयंकर युद्ध अुत्पन्न हुअे हैं। प्रत्येकने कुछ-न-कुछ नया प्रकाश डाला है। अुनमें से कुछ चीजोका मनुष्य-जातिको लाभ भी मिला है। परतु वहुत वार

अिन दर्शनो और तत्त्वज्ञानोका कुछ हिस्सा अच्छी तरह दृढ़ न हो पानेके
कारण विस्मृतिके गर्भमें लुप्त हो गया है, अथवा अुनका कुछ अंश
दृढ़ हो जानेके बाद अधूरा मालूम हुआ है; किन्तु दृढ हो जानेके
कारण ही वह आसानीसे भुलाया नहीं जा सका है। मतलब यह कि या
तो 'शिक्षा' अधूरी मालूम हुअी है या गलत पद्धतिसे दी गअी मालूम
हुअी है। अिस प्रकार, यह शोध अभी तक पूरी नहीं हुअी है; और
अधिक संभव तो यह है कि जब तक मानव-वंश चलता रहेगा, वह
पूरी नहीं होगी।

२

जीवन क्या है, अुसका प्रयोजन अथवा योग्य ध्येय क्या है, अुस
ध्येयको सिद्ध करनेका साधन-मार्ग क्या है, अिसकी प्रत्येक नअी और
स्वतंत्र व्यवस्थाको 'दर्शन' कहा जाता है। आत्मा या जगत्के
नामसे जीवन सबकी शोधका समान विषय है, अिसलिअे सभी दर्शन
जीवनके — अथवा अधिकतर सिर्फ मानव जीवनके — दर्शन हैं। लेकिन
हरअेकका दृष्टिकोण या साधन-मार्ग अलग-अलग होनेके कारण हर-
अेकको अपनी विशेषताके अनुसार अलग-अलग नाम दिया जाता है।
अिस प्रकार न्यायादि वैदिक दर्शन, जैन, बौद्ध आदि अवैदिक दर्शन
तथा अतिपूर्व और पश्चिमके विविध प्राचीन और अर्वाचीन दर्शन
प्रसिद्ध हैं। काकासाहब कालेलकरने शिक्षाको भी अेक स्वतंत्र दर्शन
माना है और अिस पुस्तकको देखते हुअे आचार्य जैक्सको भी 'शिक्षा-
दर्शन' का अेक विवेचक माना जा सकता है।

जीवन — अथवा आत्माका स्वरूप — 'अखण्ड ज्ञान' है, 'अखण्ड
योग' है, अथवा 'सतत चलनेवाली शिक्षा' है, वगैरा प्रयोग अेक
अर्थमें ठीक ही है। अैसे और भी बहुतसे विधान किये जा सकते
हैं। जैसे कि किसीने कहा है, जीवन 'अनुभवकी महान शाला' है,
अथवा 'सतत संग्राम' है, 'सतत विकास' है, 'अज्ञान, असत्य, अशुभ,

मृत्यु, शोक आदिमें से ज्ञान, सत्य, शुभ, अमरता, आनन्द आदिकी ओर ले जानेवाला महान प्रवाह' है; अथवा गांधीजीके शब्दोंमें वह 'सत्यकी अविश्रान्त शोध' है, आदि आदि। ये सब विधान सच्चे होते हुअे भी अधूरे हैं। जैसे किसी मकानके अलग अलग कोनो परसे लिये हुअे चित्र सच्चे होते हुअे भी अलग अलग कोनो परसे दिखने-वाले चित्र ही होते हैं, अुनमें से अेक भी सपूर्ण मकानका चित्र पेश नही कर सकता, वही बात अिन विधानोकी भी है। और अिसी-लिअे अेक चित्रको मुख्य मानकर अुसके आधार पर बतलाया हुआ साधन-मार्ग पूर्ण नही हो सकता। अुसका दोष दूसरे कोनो परसे लिये हुअे चित्रों द्वारा ही दूर किया जा सकता है। अिस प्रकार प्रत्येक दर्शन दूसरे दर्शनोकी कुछ-कुछ न्यूनतायें पूरी करनेवाला और कुछ हद तक जीवनको समझानेवाला होता है। परंतु ये सब दर्शन मिलकर भी जीवनका समूचा दर्शन नही करा सकते। क्योंकि जीवन आखिर जीवन ही है और चित्र यानी दर्शन चित्र और दर्शन ही हैं। अुसकी विशालता और सूक्ष्मता दोनो कल्पनातीत हैं। जैसा कि अेक अमरीकन लेखक अेमरेम शाअिनफेल्ड (Amram Scheinfeld) कहता है: "आकाशकी ओर देखकर विश्वकी अनन्त महत्ताका खयाल करनेकी शायद आपको आदत पड़ गअी होगी। सूर्य पृथ्वीसे करोड़ो मील दूर है; तेजकी बिन्दियो जैसे दिखाअी देनेवाले तारे संभव है पृथ्वीसे अब्जो गुने बड़े हों; अमुक तारेकी जो किरण आप आज देखते हैं वह छह हजार वर्ष पहले सुलगे हुअे पदार्थसे निकली होगी; और आकाश हमारी बड़ीसे बड़ी दूरबीनकी पहुंचसे भी परे है, और अुसमें शायद अब्जो तारे (यानी सूर्यमण्डल) घूमते हैं। यह सब माननेके लिअे आप तैयार हैं। यह आपके बाहरकी सृष्टिकी अनन्त महत्ता है। अब अपने अन्दरकी सृष्टिकी ओर मुडिये। वहां अनन्त सूक्ष्मताका वास है।" (You and Heredity)। अुसके आकारके प्रमाणकी कल्पना करनेके लिअे अेक चनेकी दालके बराबर जगहकी कल्पना कीजिये। अुसमें

दो अब्ज यानी सारी दुनियाकी जितनी मनुष्य-संख्या है अुतने मानव जैसे प्राणियोका निर्माण कर सकनेवाले 'सर्जक बीज' (Spermatozoa) रह सकते है। अेक अेक सर्जक बीज सूर्यके जैसे अनेक ग्रहो और अुपग्रहोका मण्डलाधीश है। अुदाहरणके लिअे, मानव-सर्जकमें अडतालीस 'अुपसर्जक' (Chromosomes) होते है; और प्रत्येक अुपसर्जकमें सैकडोकी तादादमें सूक्ष्म जनको (Genes) की शृंखला रहती है। अच्छेसे अच्छे सूक्ष्म-दर्शक यंत्रोमें यही तक बतलानेकी शक्ति है। लेकिन वैसा प्रत्येक सूक्ष्म 'जनक' भी अधिक सूक्ष्म जीवोकी माला हो सकता है। अैसे अेक सूक्ष्म जनककी शक्तिका विचार करने पर हमें मालूम होगा कि दो जनकोंके बीच रहा हुआ कोअी सूक्ष्म भेद दो मनुष्योमें प्रह्लाद और हिरण्यकश्यपु जैसा दैव-आसुर स्वभावभेद निर्माण कर सकता है। विशालताकी तरह जीवनकी सूक्ष्मता भी अुतनी ही कल्पनातीत है। तब परिमित मानव अुसका समग्र दर्शन न कर सके तो अुसमें आश्चर्य कैसा?

यदि हम हिन्दुस्तानके किसी पुराने गावमें देखें तो वहाकी बस्ती अक्सर बहुत ही अव्यवस्थित ढगसे बसी हुअी दिखाअी देती है। मकान चाहे जैसे बंधे होते हैं, गलिया टेढी-मेढी होती हैं; हवा, प्रकाश, आने-जानेके रास्ते, सीध, ढाल वगैरा किसीका भी किसीने विचार किया हो अैसा नही मालूम होता। जिसके मनमें जैसा आया वैसा दूसरेकी सुविधा-असुविधाका खयाल किये बिना मकान बाध दिया है। गावोकी यह हालत देखकर हमारे सुधरे हुअे अिंजीनियर लोग अब ग्राम-रचनाके नकशे बना रहे हैं। लेकिन वे भी हर गावको अेक स्वयपूर्ण स्वतंत्र बस्ती समझकर ही नकशे बनाते हैं। अैसे आस-पासके पांच-छह गावोका मिलकर अेक शहर बन जाय तो सभव है हर गांवके व्यवस्थित रूपसे बसे होने पर भी सारा शहर अव्यवस्थित रूपमें बसा हुआ सिद्ध हो, क्योंकि ग्राम-रचना करते समय दूसरे गावोंके साथ मिलनेका तथा शहर-रचनाका खयाल ही नही किया गया था।

यही बात 'शिक्षा' के द्वारा की गअी मानव-जीवनकी रचनाके सम्बन्धमे हुअी है। करोड़ो प्रकारकी सूक्ष्म और लाखो प्रकारकी स्थूल जीवयोनियोका मिलकर संसारमें जीवन प्रकट हुआ दिखाअी देता है। अुन सबकी हम पूरी कल्पना भी नहीं कर सकते तो परिचय तो सबसे हो ही कैसे सकता है? जितनी योनियोंसे हमारा परिचय है, अुनके भी परस्पर सम्बन्ध हम नहीं समझते। यदि कहीं समझते हैं तो वह अधूरा या विरोधात्मक सम्बन्ध होता है; मेलका सम्बन्ध हम नही जानते। अैसी अनेक योनियोमें अेक मानव-योनि है। अुसके समग्र जीवनकी भी हमें पूरी कल्पना नही है। बहुत हुआ तो हमें अुसके अलग-अलग व्यक्तियोका या छोटे-छोटे समूहोके जीवनके कुछ अंशोका ज्ञान है। जीवन-रचनाके नकशे बनानेके लिअे हमारे कुशलसे कुशल अिंजीनियरके पास भी अितनी ही ज्ञान-सामग्री है।

अैसे सीमित नये दर्शनकार भी कभी वर्षोंमें दुनियाके किसी अेक कोनेमें ही पैदा होते है, और अुनका प्रभाव भी अेक सीमित क्षेत्रमें या सीमित समय तक ही रहता है। अिसलिअे व्यवस्थित जीवन-रचनाके छुटपुट प्रयत्न होते हुअे भी कुल मिलाकर मानव-जीवन अभी भारतके अव्यवस्थित गावो जैसा ही बेडौल, गन्दा और असुविधाओसे भरा हुआ है। कवियोने सुन्दर और आह्लादक गावोकी कल्पना जरूर की है, लेकिन प्रत्यक्ष अनुभवमें वह गावोके भीतर नही मिलती। वहा तो धूल, घूरे, दुर्गन्ध और गिचपिच टेढी-मेढ़ी झोपड़ियोंके समूह ही दिखाअी देते हैं। सुन्दरता और प्रसन्नता गांवके बाहर है। अुसी प्रकार हम भी जीवनकी सुन्दरता और प्रसन्नताका दर्शन जीवनके बाहर, कल्पनाके क्षेत्रमें, परलोकमें, कर रहे हैं। जीवनके भीतर, अिस लोकमें, तो दुःख और शोकका समुद्र ही माना गया है, वर्णन किया गया है और अनुभव किया गया है।

बहुतेरे दर्शनोंका तो यह निश्चित मत है कि जीवन दुःखरूप ही है। अिसलिअे सुखकी तृष्णा मिथ्या प्रयत्न ही है; ज्यादासे ज्यादा

दु खका नाश ही किया जा सकता है, और अैसा विरले व्यक्ति ही कर सकते हैं; और वह भी प्रत्यक्ष रूपमें स्थूल दु खोको मिटा कर नही, वल्कि चित्तको अुनकी अवगणना करनेकी शिक्षा देकर ही किया जा सकता है। अुनके मतानुसार नित्य-सुखका वस्तुत. अभाव होनेके कारण अुसे ध्येय नहीं वनाया जा सकता। दूसरे कुछ दर्शन नित्य-सुखके अभावको नही मानते। वे अुसकी प्राप्तिको जीवनका ध्येय अवश्य मानते हैं, किन्तु वे भी अुसका दर्शन अिस भौतिक लोकमें नही, वल्कि अपने आध्यात्मिक जीवनमे और परलोकमें करते है। अुनकी रायमें भी यह भौतिक लोक तो दु खरूप ही है।

जो वात अवतारी पुरुषो, वुद्धो, तीर्थंकरो, पैगम्वरो और अनेक ज्ञानी सद्‌गुरुओंने वजा वजा कर कही है, अुसमें श्रद्धा न रखने या शंका करनेकी साधारण मनुष्यमें ताकत ही कहा है? और जव यह वात मूढ जीव भी जानता है कि ससारमें दु खका अनुभव होता ही है, तव फिर शका करनेका प्रयोजन भी कहा रह जाता है?

परन्तु अिस वातमे श्रद्धा रखते हुअे, वोलते हुअे और अनुभव करते हुअे भी, जीवमात्रके मनमें सुख प्राप्त करने और जगत्‌में सुख पैदा करनेकी आशा अटल स्थान वनाये रहती हैं। कभी-कभी अैसे मनुष्य अवश्य मिल जाते हैं, जिनका मानो दु खका अनुभव करनेके लिअे ही जन्म हुआ हो। परन्तु अैसा कोअी मनुष्य नहीं मिलता जो अपने-आपको केवल दु ख झेलनेके योग्य ही मानता हो। प्रत्येकको यही लगता है कि वह है तो सुखका पात्र, केवल कुछ अभागी घटनाओंके कारण जाने-अनजाने दु खका पात्र वन गया है। परन्तु अुसे मनमें तो यह आशा रहती है कि कभी ये दु खके दिन वीत जायगे और सुख मिलेगा; और जव भी सुखप्राप्तिका कोअी अुपाय अुसे दिखाअी देता है, वह अुसे आजमानेके लिअे तैयार हो जाता है।

आत्माके स्वरूपकी व्याख्या करनेमें भिन्न-भिन्न दर्शनो और धर्मोंमें चाहे जितना फर्क हो, फिर भी आत्मा-अनात्मा-विवेक अथवा

जीव-शरीर-भेद तो सभीमें किया जाता है और अुस पर जोर भी दिया जाता है। अमुक शक्तियां, भावनाअें, संस्कार, विषय आध्यात्मिक क्षेत्रके हैं और अमुक भौतिक क्षेत्रके; अमुक चीजें परलोककी हैं और अमुक चीजें अिस लोककी — अिस प्रकारका भेद करनेकी, अुसके अनुसार जीवनके आदर्शों और कर्मोंका विचार करनेकी और अुनके अभिमानका पोषण करनेकी रूढि सब जगह है, और वह अिस रूपमें स्वीकार की गअी है मानो कोअी स्वयंसिद्ध सत्य हो। फिर भी, यह बात विचारने और समझने जैसी है।

यह बात तो हम सब समझ सकते हैं कि समुद्र और तरंगोंके बीच भेद है। तरंगको समुद्र नहीं कहा जा सकता, परन्तु तरंग समुद्रकी है यह समझना कठिन नहीं। फिर भी समुद्रसे अलग तरंगके दर्शन नहीं किये जा सकते, अुसकी कल्पना भी नहीं हो सकती। तरंगके बिना समुद्रकी कल्पना तो की जा सकती है, किन्तु अुसका दर्शन नहीं हो सकता। आप तरंगोंकी अेक, दो, तीन अैसी गिनती भले कर लें, परन्तु किसी तरंगको समुद्रसे अलग करके अुठा नहीं सकते। तरंगोंको पार करनेमें समुद्र लांघा ही जाता है, किन्तु यदि तरंगोंको पार किये बिना आप केवल समुद्रको पार करना चाहें तो वह नहीं हो सकता। अिसके विपरीत यदि आप समुद्र पार करनेका लक्ष्य न रखकर केवल तरंगों पर ही झूलें तो आप अूचे-नीचे या आगे-पीछे हिल सकते हैं, लेकिन आगे नहीं बढ सकते। अिस प्रकार समुद्र और तरंगका अन्वय-व्यतिरेक है।

आत्मा और देहके बीच समुद्र-तरंग जैसा सम्बन्ध है। देहकी — अथवा भौतिक — शिक्षामें अेक तरहसे आध्यात्मिक शिक्षा भी हो ही जाती है। परन्तु देहकी अवगणना करके यदि आप केवल आध्यात्मिक प्रगति करना चाहें तो वह नहीं हो सकती। अिसके विपरीत आप अध्यात्मकी ओर लक्ष्य न रखकर सिर्फ दैहिक — भौतिक — प्रगति

करना चाहे, तो आप अूचे-नीचे या आगे-पीछे तो हिल सकते हैं, परन्तु प्रगति नही कर सकते।

अिस प्रकार आत्मा-अनात्मा-विवेकमें केवल दोके वीचकी विलक्षणता ही समझने जैसी चीज नही, वल्कि दोनोंके वीचका गाढ़ अन्वय भी ध्यानमें रखना आवश्यक है।

लेकिन दोनोका खयाल रखनेवाले भी दोनोंके परस्पर ओत-प्रोत सम्वन्धका खयाल रखना भूल जाते हैं। आध्यात्मिक जीवनका क्षेत्र अलग है और भौतिक जीवनका अलग है; अेकका विचार करते समय दूसरेको भूल जानेमें वे कोअी दोष नही देखते; अुलटे, अेकमें दूसरेको मिला देनेवाले दोषपात्र माने जाते हैं। गाधीजी पर लगाया जानेवाला यह आक्षेप तो जग-जाहिर है कि अुन्होंने सत्य, अहिंसा आदि आध्यात्मिक जीवनके गुणोको भौतिक क्षेत्रमें दाखिल करके वड़ी अव्यवस्था पैदा कर दी है। अुसी प्रकार अैसे लोगोको भौतिक विद्याकी खोजोका अनुसरण करके अध्यात्म-ज्ञानके क्षेत्रमें आनेवाले विषयोका संशोधन करनेमें भी अुतनी ही अरुचि रहती है। विज्ञानकी प्रयोगशालामें व्याख्यान देनेवाला शास्त्री और मंदिरमें प्रवचन करनेवाला शास्त्री — दोनों अेक ही व्यक्ति हो तो भी अुसका व्यवहार दो अलग-अलग व्यक्तियोकी तरह रहता है। यह भी शरीर और आत्माके वीचका अन्वय न समझनेका परिणाम है। जैसा कि आचार्य जैक्सने कहा है:

"मनुष्यकी सर्वांगीण शिक्षा सावनी हो, तो सवसे पहले हमें भूतकालसे चले आ रहे अेक हानिकारक भ्रमको दूर करना होगा। वह भ्रम अिस मान्यतामें है कि मनुष्य शरीर और मन अिन दो अलग-अलग तथा जैसे-तैसे जुडे हुअे अंगोंका वना हुआ है। अिन दोमें से वादमें मनरूपी अंशको ही दैवी मानकर अुसका शिक्षाके क्षेत्रमें समावेश किया जाता है। परन्तु शरीरको अिहलौकिक पार्थिव वस्तु मानकर शरीर-विज्ञानियों या डॉक्टर-वैद्योंके लिअे छोड़ दिया जाता है। अिस

भ्रमको हमें छोड़ना होगा और विकासकी हर सीढ़ी पर शरीर और मनको अेक अभेद्य अिकाअी मानकर अुनके समान तीव्र सहशिक्षणकी योजना गढनी होगी।" (पृष्ठ १८-१९)

जीवनको अलग-अलग हिस्सोंमें बांट देनेकी आदत भौतिक शिक्षाके विभिन्न विषयोंमें भी फैली हुअी है। आचार्य जैक्स द्वारा अपनी शिक्षाका दिया हुआ नीचेका वर्णन आजकी शिक्षा-पद्धति पर भी भली-भांति लागू होता है:

"हमारे शिक्षा-शास्त्रियोंको मनुष्यके टुकड़े करके ही अपना काम करनेकी आदत पड़ी हुअी है और अिसलिअे अुनकी सारी प्रक्रिया टुकड़ोंमें ही होती है। सबसे पहले तो शिक्षाको अलग अलग 'विषयों' में बांट दिया जाता है, परंतु अुनके पीछे अैसा कोअी व्यापक हेतु नहीं होता जो अुन सबका अेकीकरण कर सके। .. शिक्षकोंका अेक वर्ग शालाके कमरेमें हमारे मनको तालीम देता; और दूसरा वर्ग, जो बिलकुल असंस्कारी था, अखाड़े या खेल-कूदके मैदानमें हमारे शरीरोंको तालीम देता था। अेक तीसरा सद्‌गृहस्थ, जो धर्मशिक्षक कहलाता था, हमारे चरित्रका निर्माण करता था। . . . परंतु अिन तीनोंमें अेक-लक्ष्यता बिलकुल न थी। मानसिक विभाग, शारीरिक विभाग, चरित्र-विभाग या आध्यात्मिक विभाग — अिन तीनोंके बीच जरा भी सह-योग न था। शालाके वर्ग, खेल-कूदके मैदान और धर्मपीठ — तीनों अेक-दूसरेकी सहायता करनेके बदले अेक-दूसरेके काममें अडचन डालते थे। अिन सारी बिखरी हुअी प्रक्रियाओंमें शुरूसे आखिर तक अेक ही सत्य पर दुर्लक्ष्य किया जाता था और वह यह कि वास्तविक मनुष्य . . . मन, शरीर, चरित्र और जीवात्मा — अिन सबके मेलसे बना हुआ है। . . . हम कक्षामें, मैदानमें या चर्चमें जो कुछ भी अलग अलग पढते थे, अुसे यथासंभव जोडने, अुसका अेकीकरण करनेका काम हम पर ही छोड़ा गया था। . . ." (पृष्ठ २५–२६)

अूपर 'मनको शिक्षा देनेवाले' जिन शिक्षकोंके वर्गका जिक्र किया गया है, अुनके 'विषयो' में भी समन्वय स्थापित कर देनेकी आशा नही की जा सकती। हम गणितके केवल तीन ही विभाग — अंकगणित, बीजगणित और भूमिति — लें, तो अंकगणितका जो प्रकरण वर्गमें आज पढाया जाता है अुससे संबंध रखनेवाला बीजगणितका प्रकरण छह महीने या साल भर बाद भी पढाया जा सकता है; और भूमितिका तो जब अुसकी बारी आये तब। अुसी प्रकार अितिहास तथा भूगोलका, विज्ञान तथा चित्रकारी आदिका है।

"शरीर-विज्ञान, मनोविज्ञान आदि भिन्न-भिन्न शास्त्रोमें से अिकट्ठे किये हुअे टुकडोको अेक-दूसरेके साथ जोडकर या चिपटाकर प्राप्त की हुअी मनुष्य-विषयक कल्पनाके आधार पर शिक्षाकी योजना बनायें तो अुससे भारी गडबड़ी ही पैदा होगी। आज हममें से कुछ वस्तुत. अैसा ही करते है। हमें तो मनुष्य-जीवनसे संबंध रखनेवाले सभी शास्त्रोका समन्वय चाहिये, और वही वस्तु हमें अभी तक मिली नही है।" (पृ० ३१)

अिस कमीको पूरा करनेका प्रयत्न ही अिस पुस्तकका मुख्य अुद्देश्य है, और आचार्य जैक्सने जिस सुन्दर ढंगसे यह प्रयत्न किया है, वह 'शिक्षाशास्त्री' और 'साधारण पाठक' दोनोंके लिअे समान रूपमें बोधप्रद और विचारप्रेरक बन सकता है। आचार्य जैक्सने अिसे मनुष्यकी 'सर्वांगीण शिक्षा' कहा है। अुनके कुछ प्रतिपादन अिस प्रकार है:

> १ ज्ञानमात्र आज्ञार्थक है। 'अैसा है, वैसा नही है' यह जानकारी न तो ज्ञान है और न शिक्षा, बल्कि ज्ञान तो 'अैसा करो, वैसा करो' की आज्ञा देगा और शिक्षा अुसकी आदत डालेगी।
>
> २. "मनुष्यकी सर्वांगीण शिक्षा सिद्ध करनी हो तो . . . मनुष्य शरीर और मन दो अलग अलग और जैसे-तैसे जुड़े

हुअे अंशोका वना हुआ है, अिस मान्यताके भ्रमको. . . छोड़कर . . . विकासकी हर सीढी पर शरीर और मनको अेक अभेद्य अिकाअी मानकर अुनके समान तीव्र सहशिक्षणकी योजना गढ़नी" चाहिये। (पृ० १८–१९)

३. शिक्षा व्यक्तिके जीवनके अेक छोटेसे भागका कार्यक्रम नही है। वह तो जन्मसे मृत्युपर्यन्त चलनेवाली अेक अखण्ड साधना है। अुसे मनुष्यके हर काममें — मेहनत करते समय तथा फुरसतमें, सुखके तथा दु:खके प्रसगोमें — सिद्ध करना है और अुसके जरिये जीवनकी सफलता प्राप्त करना है। अुसमें देह या मन, धर्म-अर्थ-काम या 'मोक्ष' किसीकी भी अवगणना नहीं की जा सकती और न अेकको दूसरेसे अलग करके अुसके वारेमें विचार किया जा सकता है। अुसमें व्यवस्था, सुघड़ता और सुन्दरता भी होनी ही चाहिये। वह शिक्षा न तो श्रमकी विरोधिनी होगी और न फुरसतके समयका दुरुपयोग करेगी। वह जीवनमें अैसा ध्येय सिद्ध करनेवाली होनी चाहिये, "जिसके लिअे मनुष्यको मरनेके लिअे भी तैयार रहना चाहिये और जीनेके लिअे भी तैयार रहना चाहिये।"

यह तो अुनके प्रतिपादनोका कुछ ही हिस्सा मैंने यहां पेश किया है। सारी पुस्तक अप्रचलित स्वतंत्र विधानोंसे भरी पड़ी है और विचारको अेक नअी ही दिशा प्रदान करती है। फिर भी यह तो नही कहा जा सकता कि अिस पुस्तकमें शिक्षा या जीवनका स्पष्ट और अन्तिम दर्शन मिल जाता है। क्योंकि जीवन अितना सर्वव्यापी है कि अुसका समूचा दर्शन संभव ही नही है। अेक कोनेसे अुसके छोटेसे हिस्सेका ही हमें आकलन होता है। अुदाहरणके लिअे, हमारे सभी दर्शन आज भी मनुष्यको विश्वसे तथा समूचे मानव-जीवनसे भी अलग किया जा सकनेवाला अेक स्वतंत्र व्यक्ति मानकर ही अुसका निरूपण करते है। मोक्ष और भोग, अुद्धार और बन्धन, अुन्नति-विकास-

प्रगति या अवनति, ह्रास और निष्फलता — अिन सबमें हम व्यक्तिको ही अिकाअी मानकर विचार और आचरण करते है। प्रत्यगात्मा तथा ब्रह्मके वस्तुतः अभेदका प्रतिपादन अवश्य हुआ है, परतु फिर भी हम किसी न किसी रूपमें प्रत्यगात्माके ब्रह्मसे भिन्न अस्तित्व, विकास, बंधन, मोक्ष आदिको भूल नही सकते। नतीजा यह है कि जैसे शिक्षाके संबंधमें विचारे जानेवाले भिन्न-भिन्न विषयोंके बीच हम समन्वय नही साध सकते, वैसे ही व्यक्तियो और समाज, समाजो और समग्र मानव-जीवन तथा मानव-जीवन और विश्वजीवनके बीच हम समन्वय नही साध सकते। पहले समन्वयके अभावमें हर मनुष्यके मनमें ही रात-दिन झगड़ा चला करता है; दूसरे समन्वयके अभावमें बाह्य संसारमें भी झगड़ा चला ही करता है। यह समन्वय कर देनेवाला दर्शनशास्त्र तो जब बनेगा तब बनेगा। लेकिन अैसी पुस्तकोको अुस खोजकी ओर बढ़ानेवाली सीढियोंके रूपमें माना जा सकता है। यों कहकर मैं अिस पुस्तककी कीमत घटा नही रहा हू, बल्कि यही बतलाना चाहता हू कि सत्यकी खोज कितनी गहन है।

'शिक्षण अने साहित्य', अगस्त १९४२

२

अुच्च शिक्षा

गुजरात वर्नाक्युलर सोसायटी या विद्यासभाने अेक शताब्दी पूरी की, यह गुजरातके लिअे गौरवकी बात है। जिस प्रकारकी पुरानीसे पुरानी संस्था गुजरातमें शायद यह पहली ही है। मै व्यक्तिगत रूपमें विद्यासभाके गाढ संपर्कमें आया हूं, यह तो नहीं कहा जा सकता। परंतु गुजरातके जिन महान विद्वानोने अिसकी नींव डाली और अिसका सिंचन करके बड़ी लगन और अुद्यमके साथ अिसे परिपुष्ट किया, अुनकी दूर तक फैली हुअी जीवन-सुगन्धने, अुनके प्रेरणादायक साहित्यने और अुनकी निष्ठापूर्ण साहित्य-सेवाने मुझ पर अनेक शुभ संस्कार डाले है, मेरा साहित्य-रस बढ़ाया है, और जिस जमानेमें मातृभाषाका ज्ञान हाअीस्कूलो और कॉलिजोमें मिल ही नहीं सकता था, जिसे रस होता अुसे खानगी अध्ययन और अभ्याससे ही वह ज्ञान बढाना पड़ता था, अुस जमानेमें मूल गुजरातके बाहर जीवन बितानेवाले मुझको गुजराती पढ़नेका शौक लगानेमें तथा शुद्ध गुजराती लिखनेका आग्रह रखनेवाला करनेमें जिस सभामें शरीक हुअे अनेक विद्वानोने बहुत ही बड़ा योग दिया है। कवीश्वर दलपतराम डाह्याभाअी, या श्री महिपतराम नीलकण्ठ, श्री नवलराम पंडित, श्री रमणभाअी, या श्री विद्याबहनके भी व्यक्तिगत संपर्कमें आनेका मुझे सौभाग्य मिला है, यह नहीं कहा जा सकता। श्री रमणभाअीको मैंने देखा है, सुना है, अेकाध बार अुनकी दृष्टिमें भी आया हूं। श्री विद्याबहनको तो मैंने देखा भर है। परंतु अिन सब विद्वानोंके साहित्य द्वारा मुझे गुजरात और अर्वाचीन गुजराती भाषाका ज्ञान मिला है, और अेक गुजरातीके रूपमें मेरा निर्माण हुआ है। गुजरात वर्नाक्युलर सोसायटीने जो साहित्य प्रकाशित किया है, और अुसे प्रकाशित करनेके लिअे जो सुव्यवस्था कर रखी है तथा अुसे

सौ वर्ष तक सतत चलाये रखा है, वह व्यवहारकुशल और चतुर माने जानेवाले गुजरातके लिअे भी साधारण बात नही है। राजनीतिक और धार्मिक नेताओकी अपेक्षा साहित्यके अग्रगण्य लोगोमें स्पर्धाकी भावना और सस्था तोडनेवाला स्वभाव कम नही होता। गुजरात विद्यासभाको अिस स्वभावसे परेशान होना पडा है या नही, यह मै नही जानता। परंतु अुसे अपनी शताब्दी मनानेका सौभाग्य मिला है अिससे अितना तो साफ जाहिर होता है कि विघ्नोको पार करके जीवनका धारण और पोषण करनेकी अिसमें बहुत बड़ी शक्ति है। अिसका श्रेय अिसके मूल स्थापको और दाताओंके शुद्ध सकल्प, शुद्ध चरित्र और शुद्ध जीवनको ही देना होगा। कवि दलपतरामसे लेकर श्री विद्याबहन तकके लोगोकी स्थिर धर्मभावना और नीरोग दीर्घायुके साथ साथ जीवनको रसपूर्ण रखनेवाली अुनकी सरलता, गभीरता तथा शुद्ध विनोदी वृत्तिने वर्नाक्युलर सोसायटीको अैसा यश प्रदान करनेमें अवश्य ही बडा हिस्सा लिया होगा।

अिसके लिअे मै गुजरात वर्नाक्युलर सोसायटीको आदरके साथ बधाओ देता हूं, और आशा करता हू कि भावी पीढी गुजरातकी अिस सुन्दर सस्थाको अखण्ड, शुद्ध मार्ग पर प्रगतिशील और प्राणवान बनाये रखेगी तथा अिसकी कीर्तिको बढायेगी। अिस सस्थाके प्रति मेरे मनमें जो आदर है, अुसे व्यक्त करनेके लिअे मुझे जो यह मौका दिया गया अुसके लिअे मै श्री विद्याबहनका अन्त करणसे आभार मानता हूं।

अिस प्रसंग पर अेक भाषण लिख भेजनेके लिअे श्री विद्याबहनने मुझसे कहा था। अुनकी अिस अिच्छाको आज्ञारूप न मानना मेरे लिअे कठिन हो गया। लेकिन मुझे क्या कहना चाहिये यह मै निश्चित न कर सका। अभी मेरे विचारोका मुख्य विषय यही है कि 'हरिजन' पत्रोमें क्या कहा या लिखा जाय। अिसलिअे जब अन्यत्र कहीं बोलने-लिखनेका प्रसग आता है, तो मै परेशान हो जाता हूं। मैंने

श्री विद्यावहनसे ही विनती की कि वे अपनी आज्ञाको पूर्ण वना कर विषय भी सुझावें। अुन्होने दो विषय सुझाये: युनिवर्सिटीकी रचना या युनिवर्सिटी शिक्षाका माध्यम। मैंने अुस आज्ञाको सिर-माथे पर लेकर अिन दोनो विषयोको अिकट्ठा करके 'अुच्च शिक्षा' के वारेमें कहनेका विचार किया है।

संभव है मैं यहां जो कुछ भी कहूंगा, अुसका वहुत-कुछ भाग पहले कही और कभी कह चुका होअू। अुसमें नया शायद ही कुछ हो। यहा पर अुसे सिर्फ कुछ व्यवस्थित करके ही रख दूगा।

मुझे शुरूमे ही कह देना चाहिये कि अुच्च शिक्षाके वारेमें आज जिस दिशामें प्रवाह वह रहा है, अुससे भिन्न दिशामें मेरे विचार वहते है। अिस शताब्दीके आरभमें श्री गोपालकृष्ण गोखलेने जव वड़ी धारासभामें अनिवार्य प्राथमिक शिक्षाका विल पेश किया, तव मैं मैट्रिक या कॉलिजमें था। अुस समय प्राथमिक शिक्षाके सवंधमें तत्कालीन विचारको और लेखकोंका कुछ साहित्य मेरे पढनेमें आया था। और तवसे अुच्च शिक्षाकी अपेक्षा प्राथमिक शिक्षामे मेरी दिलचस्पी वढती गअी। मेरी यह श्रद्धा या विचारधारा लगभग १९०७ से ही वन चुकी थी कि हिन्दुस्तानकी सुलझाने योग्य समस्या और अच्छी तरह विकसित करने योग्य प्रवृत्ति अुच्च शिक्षा नही, वल्कि प्राथमिक शिक्षा है। चालीस वर्ष वाद भी मेरी अिस श्रद्धा और विचारधारामें तत्त्वत: कोअी फर्क नही पड़ा है। हा, अुसके विशिष्ट स्वरूपसे संवंध रखनेवाले विचारोमें वहुत-कुछ फेरफार हुआ है।

गुजरात जानता है कि अुस समय मैं स्वामिनारायण संप्रदायका पक्का अनुयायी था। अिस संप्रदायकी विपुल साधन-संपत्तिसे मैं परि-चित था। मेरी यह महत्त्वाकांक्षा थी कि अिस सम्प्रदायकी ओरसे अेक विशाल शिक्षण-सस्था स्थापित की जाय और मेरी कल्पनाके अनुसार प्राथमिक शिक्षासे लेकर क्रमश: अूची चढ़नेवाली शिक्षाकी प्रवृत्ति

सब जगह शुरू की जाय; और अैसा हो तो मैं अपना जीवन अैसी संस्थाको समर्पित कर दू।

स्वामिनारायण संप्रदायके प्रति मेरे मनमें जो निष्ठा थी, अुसमें मेरे अपने श्रेयकी अिच्छाके अलावा अिस आकाक्षाका भी भाग होगा। गुजराती भाषा तथा कुछ अशमें सस्कृत भाषाका रस पैदा होनेमें तथा कॉलिजके विषयोमें विज्ञान तथा अर्थशास्त्रकी पसदगीमें भी यह कारण-भूत होगी। लेकिन अुस वक्त तो मुझे परिस्थितिया वकालतके धधेकी ओर खीच कर ले गयी और यह अिच्छा तब तक मनमें ही मनोरथ निर्माण करती रही जब तक गाधीजीकी राष्ट्रीय गुजराती शालाके बारेमें मैंने सुन नही लिया।

मनमें विचार थे, अनुभव बिलकुल नही था, किसीको कभी खानगी रूपमें भी नही पढाया था, अिसलिअे मार्गदर्शककी जरूरत तो थी ही। अिसलिअे जब मुझे अेक ओर सार्वजनिक जीवनमें शरीक होनेके लिअे पारिवारिक अनुकूलता मिली और दूसरी ओर गाधीजीने मुझे राष्ट्रीय गुजराती शालामें शामिल होनेके लिअे कहा, तो अुस सबधमें निर्णय करनेमें मुझे बहुत समय न लगा।

गाधीजीका भी सारा जोर प्राथमिक शिक्षा पर ही था, और अिस सबधमें मैंने जो अस्पष्ट विचार गढ रखे थे, अुनकी गाधीजीके पास सगोपित और स्पष्ट योजना थी। अुसमे स्वामिनारायण सप्रदाय तो नही था, किन्तु अुसके अलावा मैंने जो कुछ भी सोच रखा था अुससे बहुत ज्यादा और मुझे पसन्द आये अैसा सब कुछ था।

अुस शालाका काम करते-करते गूजरात विद्यापीठका जन्म हुआ। अुसका क्षेत्र केवल अुच्च शिक्षाकी मर्यादामें ही नही था। अुसमें प्राथमिक शिक्षासे लेकर अुच्च शिक्षा तकके संपूर्ण शिक्षण-क्षेत्रका खयाल रखा गया था। सयोगवश अुसका जन्म असहयोगके राजनीतिक आन्दोलनके अगके रूपमें हुआ। अिसलिअे प्राथमिक, माध्यमिक और अुच्च तीनों क्षेत्रो और तीनो प्रकारकी संस्थायें अुसके हाथमें शुरूमें ही आ गअी।

लेकिन राजनीतिक परिस्थितियोंने अिसमें जो भाग लिया, अुसके परिणाम-स्वरूप अुसके संचालनमें महाविद्यालय और विनय-मंदिरका महत्त्व प्राथमिक शालाओंकी अपेक्षा बढ गया। यह अनिवार्य था; किन्तु अुससे विद्यापीठकी प्रवृत्तिमें मेरी दिलचस्पी घट गअी, और दिल-चस्पीके बिना महामात्रका काम करनेसे मैं दूसरे कार्यकर्ताओंके मार्गमें बाधक भी बन गया। गुजरातकी सेवा करनेकी अिच्छासे आया हुआ परदेशी-जैसा मैं गुजरातके मार्गमें बाधाअें अुत्पन्न करनेवाला बनूं, यह बात मुझे अखरी, और मैं अन्तर्मुख बन गया। व्यक्तिगत रूपमें अुस समय मेरे जीवनका रस भी अधिकाधिक आध्यात्मिक चिन्तनकी ओर बढता जा रहा था, अिसलिअे कुछ ही महीनोंमें मैं गांधीजीकी अिजाजत लेकर विद्यापीठसे अलग हो गया और डेढ-दो साल निवृत्त रहा। बादमें सरदार पटेलकी अिच्छाको मान कर मुझे फिरसे महामात्रका पद स्वीकार अवश्य करना पड़ा, और दो-तीन वर्ष मैंने अुस पद पर काम भी किया, लेकिन अुस वक्त मैं बहुत-कुछ बदला हुआ मनुष्य था और वातावरण तथा परिस्थितियां भी बदली हुअी थीं। अुस समय शिक्षा-सबंधी मेरे विचार विशेष परिपक्व हो गये थे, किन्तु मेरे दुरा-ग्रह जैसे मालूम होनेवाले आग्रह मिट गये थे, और मैं जो झगड़ा करनेवाला और हठीला माना जाता था, अैसा बन गया कि अपने साथियोंको पसन्द आ सकूं।

परंतु दिनदिन राजनीतिक वातावरण बदलता जा रहा था, असहयोगका जोश ठंडा पड़ता जा रहा था, और अुच्च शिक्षा तथा विनय-मंदिरोंके लिअे खूब श्रम और धन खर्च करने पर भी ये संस्थाअें बन्द होती या अलग होती जा रही थीं। अिसे रोक सकना किसी तरह संभव नहीं था। अुलटे, राजनीतिक दृष्टिसे आये हुअे आचार्य और अध्यापक राजनीतिक आन्दोलनका रूप बदलते ही खुद अुसमें बह गये, और विद्यापीठ क्षीण-प्राय हो गया। बंबअी युनिवर्सिटी और हाअीस्कूलोंके प्रतिस्पर्धियोंके रूपमें पैदा हुअे महाविद्यालय और विनय-

मंदिर बन्द हो गये और अुतने ही क्षेत्रको राष्ट्रीय शिक्षण माननेवाला राष्ट्रीय शिक्षणका काम बन्द हो गया।

मेरा पहलेसे ही यह मत था कि बम्बअी युनिवर्सिटी या हाअी-स्कूलोकी प्रतिस्पर्धामें गैर-सरकारी सस्थायें चलाना राष्ट्रीय शिक्षाका सच्चा कार्य या क्षेत्र नही है। मेरी कल्पनाके गूजरात विद्यापीठके लिअे कुछ करने जैसा हो तो वह नये ढगसे सार्वत्रिक प्राथमिक शिक्षणके क्षेत्रमें ही था और है।

फिर भी, गूजरात विद्यापीठने जितने समय तक विनय-मदिर और महाविद्यालयके क्षेत्रमें काम किया, अुतने समयमें अुसने शिक्षाके अुस क्षेत्रमें भी शिक्षाकी दृष्टिसे बहुत ही अच्छा योग दिया और कुछ सिद्धान्तोको सर्वमान्य करवानेमें वह सफल हुआ। अुदाहरणके लिअे .

१. चाहे जैसी अुच्च शिक्षा गुजरातीके द्वारा देनेमें कोअी बडी कठिनाअी नही है, यह अिसने जितने विषयोमें निष्ठापूर्वक प्रयत्न किया अुतनोमें सिद्ध कर दिखाया। बेशक, सब विषयोमें वह वैसा न कर सका, क्योकि कुछ विषयोके अध्यापक ही गुजराती नही थे। अत अुनके लिअे यह असभव था। लेकिन गुजराती भाषामें अुच्च शिक्षा किस तरह दी जा सकती है, यह भय गुजराती अध्यापकोंके मनसे निकल गया। बेशक, अुन्हें पाठ्य-पुस्तको या पारिभाषिक शब्दोकी कमी मालूम हुअी, लेकिन अुन्होने यह अनुभव न किया कि अुनके बगैर काम ही नही चल सकता। पढाते-पढाते अुन्होने कुछ पुस्तकें भी लिखी और पारिभाषिक शब्द भी बनाये। ये पुस्तकें पढाअीके अनुभवके साथ तैयार की गअी थी, अिसलिअे वे अग्रेजी पाठ्य-पुस्तकोकी अनूदित रचनायें न रही। अुनके लिअे अंग्रेजी पुस्तकोका आधार लिया गया था, फिर भी वे स्वतत्र रचनायें ही थी। पारिभाषिक शब्द भी कल्पित ही नहीं बनाये गये। वे अैसे थे कि विद्यार्थियोकी जबान पर चढ जाय और गुजराती भाषाके साथ अुनका मेल बैठे। वे अुपयोगमें आते-आते पैदा हुअे थे।

विद्यापीठकी प्रवृत्ति बहुत मन्द पड़ जाने पर भी अुसके प्रचलित किये हुअे बहुतसे शब्द समस्त गुजरातने अपनाये हैं और आज तक जीवित रहे हैं। पहले पाठ्य-पुस्तकोंकी रचना हो, पारिभाषिक शब्द निश्चित हों, अुसके बाद ही स्वभाषा द्वारा शिक्षा दी जा सकती है — यह मान्यता मुझे मन्द-पुरुषार्थ, आलस्य या वहमका चिन्ह दिखाअी देती है। जो शिक्षक घरसे पाठ्य-पुस्तकोंमें से पाठ रटकर लाते हैं और वर्गमें आकर अुगल देते हैं, अुन्हें ही स्वभाषाकी पाठ्य-पुस्तकों और तैयार पारिभाषिक शब्दोंका अभाव बाधक मालूम हो सकता है। जिसे अंग्रेजी आती हो, जिसके पास अुस भाषाकी पाठ्य-पुस्तकें हों, जिसे विषयका ज्ञान हो, अुसे यदि तुरन्त पारिभाषिक शब्द न सूझें तो वह अुन शब्दोंके लिअे अंग्रेजी शब्दोंका अुपयोग कर सकता है। किन्तु अपनी भाषामें विषय समझानेका आत्म-विश्वास तो अुसमें होना ही चाहिये; और यदि वह आजमा कर देखे तो दो-चार बार प्रयत्न करनेसे वह सफल भी हो सकता है। अिससे अुसे अपनी पढ़ानेकी तथा विद्यार्थियोंकी ग्रहण करनेकी शक्ति भी बढ़ती हुअी दिखाअी देगी। पारिभाषिक शब्दोंकी रचनामें तो विद्यार्थी भी मदद कर सकते हैं। दूसरे शिक्षक तो करते ही हैं। संभव है अेक ही विषय पढ़ानेवाले भिन्न-भिन्न महाविद्यालयोंमें भिन्न-भिन्न पारिभाषिक शब्द रचे जायं। वे शब्द परस्पर पत्र-व्यवहार या अुस सबंधमें चलनेवाले मासिकके द्वारा सुधर सकते हैं। विद्यापीठ अुन्हें अिकट्ठा करने और अुनमें से चुनाव करनेका काम भी कर सकता है। संक्षेपमें कहा जाय तो पाठ्य-पुस्तकों और पारिभाषिक शब्दोंकी रचना पहले हो और शिक्षाके माध्यमको बदलनेका विचार बादमें, अिस क्रमको यदि हम अुलटा न कहें तो भी अिसे अनावश्यक शर्त तो कहना ही होगा।

२. गूजरात विद्यापीठकी प्रवृत्तिने गुजरातकी यदि दूसरी कोअी सेवा की हो, तो वह गुजराती भाषाका गौरव बढ़ानेकी है। अंग्रेजोंकी तरह ही अंग्रेजी भाषा लिखना और बोलना आना चाहिये — अिसका

हमारे पढे-लिखोंको मोह रहता था; और जिसे अच्छी तरह अंग्रेजी लिखना-बोलना आता, अुसे अिसका घमण्ड भी रहता था। लेकिन अगर वह गुजरातीमें चार वाक्य भी शुद्ध न लिख सके, तो अिसके लिअे न तो अुसे शर्म आनी थी, न अिसका अुसे भान ही रहता था। अैसी हमारी स्थिति थी। यदि कोअी Seen का अुच्चारण या हिज्जे Sin जैसा करता, Law का अुच्चारण Lo जैसा करता, या किसीके मुंहसे I had went निकल जाता तो अुसकी अैसी हंसी अुडाअी जाती कि वह शर्मसे गड जाता था। लेकिन ये हंसी अुडानेवाले 'शिला' और 'शीला' का या 'सीमन्त' और 'श्रीमन्त' का भेद नहीं समझते थे, तथा 'स्थित' की जगह 'स्थगित' का अुपयोग करते थे। और अिसका अुन्हें खयाल तक न होता था, न लज्जा ही आती थी। मैं मानता हूं कि अिस स्थितिको बदलनेमें गूजरात विद्यापीठके स्नातकोंकी विशेष शुद्ध भाषाने अच्छा काम किया है। अिसके कारण गुजरातियोंको यह भान हुआ कि हमारी मातृभाषाका शुद्ध न होना हमारा अेक बड़ा दोष है।

यूनिवर्सिटीकी परीक्षाओं वगैराकी पद्धतियोंमें भी गूजरात विद्यापीठके अुदाहरणसे बहुत-कुछ सुधार हुअे।

फिर भी यह बात मुझे कभी नहीं जची कि बम्बअी युनिवर्सिटीकी समकक्ष अेक दूसरी गैर-सरकारी युनिवर्सिटी खड़ी करना राष्ट्रीय शिक्षाका मुख्य कार्य है। बम्बअी युनिवर्सिटी आम जनताके अुपयोगकी शिक्षण-संस्था नहीं है। वह कुछ विशेष प्रकृति और रुचिके लोगोंके लिअे है और कुछ चुने हुअे क्षेत्रोंमें अुपयोगी सिद्ध होनेवाली शिक्षा देती है। आम जनताके अुपयोगकी बचपनसे लेकर अूंची कक्षा तककी शिक्षा देनेवाली कोअी संस्था न होनेके कारण और युनिवर्सिटी शिक्षाकी बहुत प्रतिष्ठा और अेक समय बहुत कीमत होनेके कारण आवश्यकतासे अधिक तरुण अुनकी ओर खिंचे और अभी तक भी

खिंचते जा रहे हैं। नतीजा यह है कि अेक ओर स्कूल और कॉलेज बढ़ते जा रहे हैं, फिर भी जितने विद्यार्थी अुनसे लाभ अुठाना चाहते हैं और परीक्षाओंके परिणामोंके अनुसार योग्य ठहराये जाते हैं, अुनके लिअे वे काफी नहीं होते। और दूसरी ओर यह शोर मचा रहता है कि स्कूल-कॉलेजोंकी शिक्षा संतोषजनक नहीं है, अुससे बेकारोंकी संख्या ही बढ़ती है। दूसरी आश्चर्यकी बात यह है कि जितने विद्यार्थी परीक्षाओंमें बैठते हैं अुनमें से किसी परीक्षामें अठारह-बीस प्रतिशत ही पास होते हैं; किसीमें तीस-पैंतीस प्रतिशत; तो किसीमें पचाससे साठ प्रतिशत तक। जब पचाससे साठ प्रतिशत तक परिणाम निकलता है तब हम अुसे संतोषजनक मानते हैं; तीससे पैंतीस प्रतिशत तक हो तो जरा असंतोष व्यक्त करते हैं; और अिससे भी कम हो तो शिकायत करते हैं। पचाससे साठ प्रतिशत परिणामसे हमें संतोष होता है, अिससे मालूम होता है कि हम भी यही मानते हैं कि विद्यार्थियोंका अेक-तिहाअीसे ज्यादा भाग या तो युनिवर्सिटी शिक्षाके योग्य नहीं है या फिर वह शिक्षा विद्यार्थियोंके लिअे योग्य नहीं है। मतलब यह कि अेक-तिहाअी या अिससे ज्यादा विद्यार्थियोंका या अुनके लिअे लगनेवाले धन, श्रम और समयका दुरुपयोग होता है। अितना सब अपव्यय होनेके बावजूद हम अिस परिणामको संतोषजनक मानते हैं, अिससे यही सिद्ध होता है कि संतोष पानेका हमारा माप-दण्ड कितना छोटा है। असलमें तो यदि विद्यार्थियोंको योग्य प्रकारकी शिक्षा मिले, और वे वही शिक्षा लेते हों जो अुनके योग्य है, तो लगभग शत-प्रतिशत नहीं तो नव्वे-पंचानवे प्रतिशत विद्यार्थी क्यों पास न होने चाहिये? पांच-दसके लिअे यह माना जा सकता है कि संयोगवशात् वे किसी परीक्षामें असफल रहें। किसी स्विमिंग बाथमें सौ मनुष्य तैरना सीखनेके लिअे दाखिल होना चाहें, अुन्हें दाखिल किया जाय, सारा पाठ्यक्रम पूरा किया जाय और अन्तमें जब परीक्षा ली जाय और यह परिणाम निकले कि चालीस प्रतिशत विद्यार्थियोंको

अभी तैरना नही आया, तो अुसका क्या अर्थ किया जायगा? अुसका अर्थ मेरे विचारसे यही होगा कि या तो ये चालीस प्रतिशत भरती होने पर भी तैरना सीखनेके लिअे नही जाते थे, या फिर किसीने अुन्हें तैरना नही सिखाया। चूंकि अुन्हें परीक्षामें बैठने दिया गया है, अिसलिअे यह तो नहीं कहा जा सकता कि वे तैरना सीखनेके लिअे नही जाते थे। वे बराबर हाजिर न रहे होते तो अुन्हें परीक्षामें बैठनेकी अिजाजत ही नही दी जाती। अिसलिअे दूसरा ही अर्थ करना होगा कि जितने विद्यार्थियोको भरती किया जाता है अुतने विद्यार्थियोको सिखानेके लिअे वहां ठीक व्यवस्था नही है। अुसी प्रकार जिस सस्थामें चालीस-पचास प्रतिशत विद्यार्थी हर साल नापास होते है, अुसमें पढाओकी व्यवस्था ठीक नहीं है अिसके सिवा और क्या कहा जा सकता है?

अिसका कारण भी है। हमारी शिक्षा-पद्धति यान्त्रिक है। 'गुरु प्राज्ञ और जड दोनोको समान रूपमें विद्या देता है', अिस प्राचीन प्रणालीका अनुसरण हमारी शिक्षा-सस्थायें करती हैं। मतलब यह है कि गुरु ग्रामोफोनका रेकार्ड बनकर बैठता है, और विद्यार्थी अुस रेकार्डको सुनकर जितना योग्य समझता है अुतना बोध लेता है अथवा नही भी लेता। जब रेकार्ड बजता है तब ग्रामोफोनको यह नही मालूम होता कि अुसे सुननेवाले दरअसल सुनते है या नहीं, अथवा कितना सुनते हैं। अुसकी तो चाबी भर दी गअी है, अिसलिअे वह बजता रहता है। कॉलिजके अध्यापककी भी क्या यही स्थिति है? बिलकुल अैसी तो नहीं है, फिर भी अितना तो निश्चित है कि शिक्षा-सस्थाओमें बहुत कम अध्यापकोमें गुरुकी योग्यता होती है; अुनमे और विद्यार्थियोमें गुरु-शिष्य भाव ही पैदा नही होता। किसी योग्य अध्यापकके साथ प्रतिवर्ष जिन दो-चार विद्यार्थियोका अैसा संबध बधता है, अुतने ही सच्चा लाभ अुठाते है। शेष तो अध्यापक अपने-आपको ग्रामोफोनकी तरह जो बजा देते है अुसमें से जितना अच्छा लगता है अुतना

ले लेते हैं; वादमें अध्यापक अपनी राह और विद्यार्थी अपने शौकोंकी राह चले जाते हैं।

विद्यार्थियोंके सच्चे गुरु कौन होते हैं, यह वाल-मदिरसे लेकर युनिवर्सिटी तककी सस्थाओंके विद्यार्थियोंके जलसोमें स्पष्ट हो जाता है, तथा अुनके रोजके चलने-फिरने और शरीर-शृंगार वगैरासे प्रकट हो जाता हैं। सिनेमाके नट-नटी, नृत्यकार, गायक और कहानी-लेखक विद्यार्थी-समाजके हृदयमें समाये हुअे गुरु है। अुनकी सच्ची युनिवर्सिटियां थियेटरोमें है। अुन्हे देखकर वे अपनी आकाक्षायें गढ़ते है, रुचि-अरुचिका निर्माण करते हैं; अर्थात् अपना चरित्र गढते है। स्कूल या कॉलिज तो अुनके लिअे केवल 'क्लास' या वर्ग है। यानी जैसे कोअी हिसावनवीसीके क्लासमें जाते है, कोअी शॉर्ट हैण्डकी क्लासमें जाते है, कोअी सिलाअीकी क्लासमें जाते है, अुसी तरह विद्यार्थियोका अेक वडा समूह स्कूल और कॉलिजकी क्लासोमें जाता है। अुसमें अुनका अुद्देश्य कमाअीका कोअी सावन प्राप्त करना ही रहता है। यदि कोअी हिसावनवीसी, शॉर्ट हैण्ड या सिलाअीकी क्लासमें गया हो और वहांका प्रमाणपत्र भी अुसने प्राप्त किया हो, किन्तु यदि वह हिसाव-किताव लिखकर न वतला सके, शॉर्ट हैण्डमे पत्र न लिख सके या कपड़े न सी सके, तो अुसके प्रमाणपत्रकी कोअी कीमत नही होती। काम देखकर ही अुसकी कीमत होती है। लेकिन स्कूलो और कॉलिजोंके प्रमाणपत्रोंकी हमने पहलेसे ही प्रतिष्ठा मान रखी है। अिससे भ्रम वढ़ता है और विद्यार्थी वहांसे पूरा ज्ञान प्राप्त किये विना ही वहांका प्रमाणपत्र हासिल करनेके लिअे अधीर हो जाते है।

अिसके अलावा, शिक्षाकी अेक अुलटी व्यवस्था वन गअी है। अुच्च शिक्षाकी व्यवस्था करते समय विद्वान अध्यापक जवाहरलाल नेहरू, रावाकृष्णन्, चन्द्रशेखर व्यंकटरमनको आदर्श वनाते हैं। कुशाग्र वुद्धिके विद्यार्थी वीस-वाअीस वर्षकी अुम्रमें जितना सीख सकते हैं अुतना सभी विद्यार्थी सीख सकते है, यों मानकर अुन्होने वी० अे०

की पढाओीमें बीसवें वर्ष तक जितने विषय अच्छी तरह ग्रहण कर लिये थे वे सब विषय अुस आयु तक सभी विद्यार्थियोको सिखाये जाने चाहिये और अुन्हें आने ही चाहिये, अिस खयालसे बी० अे० का स्तर तय किया जाता है। अिसके बाद यह ठहराया जाता है कि विद्यार्थीको चार वर्षमें अितना पढ़ाया जाना चाहिये। अुसके आधार पर यह तय किया जाता है कि यह सब चार वर्षमें पढ लेनेके लिअे विद्यार्थीको कितनी तैयारी करके वहा जाना चाहिये। यही मैट्रिकका पाठ्यक्रम बनता है। यह पाठ्यक्रम १६ वर्षकी अुम्रमें पूरा हो जाना चाहिये, अैसा मानकर अुसका ६ ने १६ वर्षके बीच बंटवारा किया जाता है। यो अूचाओीका स्तर और होशियार विद्यार्थीकी अुम्र निश्चित करके हम अुसके नीचेके हिस्से करते हैं। अिसका परिणाम यह हुआ है कि शिक्षाका विकास वृक्षकी तरह बीजमें से अूपर नही बढ़ता, बल्कि जैसे जैसे विद्यायें अूपर बढ़ती और विकसित होती जाती हैं, वैसे वैसे अुसका नीचेका बंटवारा करनेकी व्यवस्था बदलती जाती है, और वही प्राथमिक, माध्यमिक आदि शिक्षाका रूप लेती है। यह शिक्षा मुट्ठीभर लोगोंके लिअे ही अुपयोगी होती है, और अुसका सदुपयोग तो और भी कम लोग करते है। लेकिन अुसके वितरणका प्रयत्न अिस ढंगसे किया जाता है, मानो वह शिक्षा सभीके लिअे हो।

राष्ट्रीय शिक्षाके नामसे शिक्षाका जो स्वरूप रचनेके लिअे गांधीजी और अुनके साथियोने आश्रममें प्रयत्न किया, वह अिससे अलग ढंगका है। अुसका ध्येय यह नही है कि सौमें से दो-चार बहुत ही कुशल विद्यार्थियोंको खोज निकाला जाय और अुन्हें पारंगत या 'रेकार्ड ब्रेकर्स' बनाया जाय, बल्कि वह तो अैसी शिक्षा है जो किसीको भी अपने दायरेसे अलग नहीं रखती तथा जिससे सबको आवश्यक योग्यता मिल ही जाती है। यह बात मैं अेक दूसरे अुदाहरणसे समझाता हूं। व्यायाम शालाके दो प्रकारके ध्येय हो सकते हैं: अेक यह हो सकता है कि बहुतसे विद्यार्थियोंमें से नाम कमावे अैसे दो-चार पहलवान तैयार करना

जो तैरनेमें, दौड़नेमें, कूदनेमें या कोओी दूसरी शारीरिक शक्तिमें दुनियाके पहले दो-चार लोगोंमें आवे और तमगे तथा अिनाम प्राप्त कर सकें। अैसी व्यायामशाला अिन दो-चार विद्यार्थियोंकी दृष्टिसे सब विद्यार्थियोंके लिअे कसरतका पाठ्यक्रम बनायेगी। अैसे विद्यार्थी विरले ही निकलेंगे, लेकिन अुनके लिअे वह अपनी सारी शक्ति खर्च करेगी। दूसरे विद्यार्थी अुनके साथ नहीं चल सकेंगे, अुलटे हैरान होंगे, या फिर अुनकी ओर ध्यान नहीं दिया जा सकेगा। युनिवर्सिटी शिक्षाकी आज अैसी ही हालत हो गयी है। दूसरी व्यायामशाला 'रेकार्ड ब्रेकर्स' निर्माण करनेका ध्येय ही नहीं रखती। वह मानती है कि अैसे विद्यार्थी अपना स्थान आप खोज लेंगे। कोओी जवाहर अनुकूल परिस्थिति न मिलनेके कारण दबा हुआ रह जाय तो भी अुसे वह खास चिन्ताका विषय नहीं मानेगी। अुसका ध्येय यह होगा कि किसी भी संपूर्ण अवयवोंवाले मनुष्यको शरीरकी अमुक योग्यता रखनी ही चाहिये। अमुक समय तक काम करनेकी, अमुक दूरी तक अमुक तेजीसे चलनेकी, दौडनेकी, या बोझ अुठानेकी शक्ति हरअेकमें होनी ही चाहिये; अमुक हद तक श्रम करनेकी आदत सबको होनी ही चाहिये; अमुक रूपमें स्नायुओंका विकास होना ही चाहिये। अिसलिअे अुस व्यायामशालाके सचालक अैसे स्तर निश्चित करके, जिन तक सभीको पहुंचना ही चाहिये, सबको शिक्षण देंगे। जो शिक्षा लेनेके योग्य है वे तो अुसमें नापास होंगे ही नहीं, हां, कुछ अुनसे आगे भले निकल जायं।

अिस प्रकार दुनियामें मनुष्योंकी बहुत बड़ी संख्याको शरीरश्रम और मेहनत-मजदूरी तथा अुत्पादक धंधे ही करने होंगे। कारकूनों, शिक्षकों, वकीलों, डॉक्टरों, अिंजीनियरों, राजनीतिज्ञों, बड़े अधिकारियों, मंत्रियों, नेताओं आदिकी संख्या सब मिलाकर हजारके पीछे दो-तीन ही होगी। हमारे देशमें तो बहुत बडी संख्याको खेती करनी होगी, ग्राम-जीवन बिताना होगा और वहाकी मेहनत-मजदूरी कुशलता या अकुशलतासे करनी होगी। यह स्थिति होते हुअे भी हम अिस प्रकार

शिक्षाका विचार करते है, अैसा आदर्श पेश करते है और अुसके पीछे सबको पागल बनानेका प्रयत्न करते हैं, मानो सभीको नेता बनना हो, सभीको फौजमें भरती होना हो, सभीको जगदीशचन्द्र और रवीन्द्रनाथ बनना हो। शिक्षाका यह मनोरथ बहुजन-समाजके लिअे निरुपयोगी और घातक है। शिक्षाकी योजना अैसे ढंगसे विचारी जानी चाहिये कि वह सबसे पहले तो जो प्रवृत्तिया सारे समाजको जीवनभर करनी होती हैं अुन्हें अुत्तम रीतिसे, शास्त्रीय ढगसे करनेकी तालीम दे, मनुष्यके शरीर, मन, बुद्धि, चरित्र आदिको अुन प्रवृत्तियोंके अनुकूल बनाये; अुनमें अुसे आनन्द आये और कुशलता प्राप्त हो; वह ग्राम-वासी, नगरवासी, कुटुम्बीजन, और समाजके अेक व्यक्तिके रूपमें अच्छी तरह जीना सीखे। अुसमें स्वावलंबन और आत्मविश्वास पैदा हो। वह नेता न बने, लेकिन स्वाभिमानी तो बने ही; वह अमीर न बने, लेकिन स्वाश्रयी बननेकी हिम्मत तो रखे ही। वह राममूर्ति न बने, लेकिन हाथ-पैरसे अपग तो हरगिज न रहे। सबके लिअे अैसी योजना बनानेके बाद तथा लगभग सोलह वर्षकी अुम्रमें हरअेक स्वाश्रयी बन सके अितनी योग्यता अुसमें पैदा कर देनेके बाद जिसे शौक हो, सुविधा हो, बुद्धि हो, अुसके लिअे आगे बढनेकी व्यवस्था करे। अुसे अपने पसन्द किये हुअे अुद्योग, औद्योगिक विज्ञान या बौद्धिक विषयकी शिक्षा दे। तब यह प्रश्न ही न रहेगा कि अुन संस्थाओंका लाभ लेनेके लिअे जो प्रारभिक ज्ञान आवश्यक है अुसके लिअे आवश्यक तैयारी तथा बादमें अुसका सपूर्ण शिक्षण अुसे कितने समयमें पूरा कर लेना चाहिये। विद्यार्थी तीस वर्ष तक निष्णात बने तो भी कोअी हर्ज नही। अुसे यदि बीचमें कही रुकना हो तो रुक भी सकता है, क्योकि वह अपने पिछले शिक्षाकालमें स्वाश्रयी तो बन ही गया है।

'बुनियादी तालीम' या 'वर्धा-योजना' के नामसे जो शिक्षा प्रख्यात हुअी है अुसका यही ध्येय है। 'बुनियादी तालीम' की योजनामें अुसके मुद्दे जितने स्पष्ट रूपमें पेश किये गये है, अुतने स्पष्ट रूपमें

जब हम साबरमतीकी राष्ट्रीय शाला चलाते थे अुस समय हमें शायद वे न भी दिखाअी दिये हों, फिर भी बीजरूपमें तो हमारे मनोरथ अैसे ही थे। अुसमें बम्बअी युनिवर्सिटी जैसी संस्थाकी शिक्षाका निषेध नहीं है, वह सिर्फ अुसका मूल्य मर्यादित करती है। युनिवर्सिटी शिक्षाका अुपयोग अल्पसंख्याके लिअे है, बहुजन-समाजके लिअे नहीं। परंतु अुसे जिस ढंगसे प्रतिष्ठा मिली है, अुसके कारण जिनके लिअे वह योग्य नहीं होती अुन्हें भी प्राप्त करने योग्य वस्तु मालूम होती है; और अिसलिअे विद्यार्थियोंके बहुत बड़े हिस्सेकी शक्ति, समय और पैसेका अपव्यय होता है। अैसी संस्थाओंमें जितनी जगह होती है, अुससे सौ गुने अधिक अुम्मीदवार होते है, और असंतोष बढ़ता है। फिर भी विद्यार्थियोको बहुतसा जानने लायक भी सामान्य ज्ञान नहीं मिलता। जो मिलता है अुसमें से बहुतसा तो कभी भी अुनके अुपयोगमें नहीं आता, और कितना ही ज्ञान तो परीक्षाके दूसरे दिन ही वे भूल जाते हैं। ज्यादातर विद्यार्थी तो परीक्षाके बाद अध्ययनको सदाके लिअे तिलांजलि दे देते है; अुनमें यावज्जीवन विद्यार्थी रहनेकी अुमंग ही नहीं रहती। जिस अंग्रेजी ज्ञानके लिअे बेहिसाब समय लगाया जाता है, वह भी कामचलाअू ही रहता हैं; और जिन्होने स्वभाषाको खास विषयके रूपमें लिया हो अुन्हें छोडकर शेषको अुसका ज्ञान भी नहीं-जैसा ही मिलता है।

फिर भी, युनिवर्सिटी शिक्षाका अुसके मर्यादित क्षेत्रमें अुपयोग है। अिसलिअे अुस सबंधमें विवादास्पद प्रश्नो पर दो-चार विचार पेश करता हूं।

आधुनिक शिक्षाशास्त्री अुच्च शिक्षाके बारेमें तीन भिन्न भिन्न आदर्शोंकी कल्पना करते पाये जाते हैं। अेकका आदर्श है 'ऑक्सफर्ड-कैम्ब्रिज' जैसे या 'नालंदा-तक्षशिला' जैसे छात्रालय-विद्यापीठोंका। ऑक्सफर्ड-कैम्ब्रिज तथा नालंदा-तक्षशिलाके आदर्शोंमें प्राचीनता-अर्वाचीनताका भेद अवश्य होगा, परंतु दोनोंका स्वरूप छात्रालय-विद्यापीठका है। अिस आदर्शमें माननेवालोंका आग्रह है कि अब जो भी नअी

युनिवर्सिटी स्थापित की जाय, वह छात्रालय-विद्यापीठ ही होनी चाहिये। आगे मैं अैसी युनिवर्सिटीके लिअे 'विश्वविद्यालय' शब्दका प्रयोग करूंगा।

दूसरा आदर्श प्रान्तव्यापी संस्थाओंको मान्यता देकर तथा परीक्षायें लेकर प्रमाणपत्र देनेवाले भारतकी आधुनिक युनिवर्सिटियों जैसे मण्डलका है। अुसमें छात्रालयको महत्त्व नहीं दिया जाता, न वह किसी अेक स्थानके लिअे होता है। वह व्यापक विद्यापीठ है। अुसके लिअे आगे मैंने 'ज्ञानपीठ' शब्द सुझाया है।

तीसरा आदर्श गुरुकुल विद्यापीठका है। यह नालंदा-तक्षशिलासे कुछ अलग ही कल्पना है। सांदीपनिके पास रहकर शिक्षा पानेवाले कृष्ण-बलदेवके जीवनका जो वर्णन मिलता है, 'अभिज्ञान शाकुंतल'में कण्वके आश्रम पर से जो कल्पना होती है, छांदोग्योपनिषद्में अुद्दालक आदिके गुरुगृहोंकी जो कल्पना होती है, यह आदर्श अुसीके आधार पर रचा हुआ है। अिसके विशाल स्वरूपमें रवीन्द्रनाथ टागोर जैसे किसी प्रतापी कुलपतिके पास, जिसके आसपास अनेक विद्वानोंका मण्डल होगा, विद्यार्थी बचपनसे लेकर बीस-पच्चीस वर्षकी अुम्र तक रहेगा, आश्रमके संचालनसे संबंध रखनेवाले सभी छोटे-बड़े काम करेगा, गुरुजनोंकी व्यक्तिगत परिचर्या करेगा, और विद्वानोंमें से किसी अेकके साथ विशेष सम्बन्ध रखेगा। वह अध्यापक जो पढ़ायेगा वह पढ़ेगा, विद्याके अनुसंधानसे संबंध रखनेवाला जो कुछ भी काम अध्यापक करता होगा अुसमें वह अुनकी सहायता करेगा, अुसीमें से अुसकी शिक्षा भी होती रहेगी, और जब अध्यापकको लगेगा कि अुसका विद्यार्थी बुद्धि आदिके प्रमाणमें जितना सीख सकता है अुतना सीख चुका, तो वह अुसे प्रमाणपत्र देगा और वह विद्यार्थी स्नातक माना जायगा। जहां रवीन्द्रनाथ जैसे कोअी मण्डलवर्ती कुलपति न हो, बल्कि कोअी स्वतंत्र विद्वान हो तो अुसका शिष्य भी अिसी तरह स्नातक बनेगा। जैसे, काका साहब, पं० सुखलालजी, या धर्मानन्द कोसम्बी जैसोंके पास रहकर,

अुनके कामोमें हाथ बंटाकर और अुसमें से खुद भी सीखकर तैयार हुअे विद्वानोको अिस प्रकारके स्नातक कहा जा सकता है। ये स्नातक अमुक विद्यालयके स्नातक नही, परन्तु अमुक गुरुके स्नातक माने जायंगे।

हिन्दू त्रिवर्णोमें गोत्र-शाखा-प्रवर आदिके जो नाम चले आते हैं, वे शायद अिसी गुरु-परम्पराके सूचक हैं। अेक गोत्रके मनुष्य किसी अेक पूर्वजके ही वंशज होंगे, यह विश्वासके साथ नही कहा जा सकता। जैसे, कौशिक गोत्रवाले ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य सारे भारतमें पाये जाते हैं। अुन सबका कोअी अेक ही पूर्वज होगा यह कहना कठिन है। परन्तु संभव है अुन सबके कोअी-न-कोअी पूर्वज किसी कौशिक ऋषिके गुरुकुलके शिष्य-प्रशिष्य रहे होंगे और अुन्हें गुरुके रूपमें स्वीकार किया होगा। अुनका गोत्र अुनके गुरुकुलकी पहचान है।

अैसे विद्यापीठको सरकारी मान्यता मिलती ही है, अैसा नहीं कहा जा सकता। यदि मिले भी तो वह अुसके स्नातकोंका अनुभव होनेके बाद ही मिलेगी। सरकारका ताम्रपत्र — चार्टर — लेनेके बाद अुसकी स्थापना नहीं होती। अुस पर सरकारका कोअी अंकुश नहीं रह सकता। अुसे मान्यता देनेमें और अुसकी सहायता करनेमें सरकारको भी अपनी प्रतिष्ठा बढ़ती हुअी मालूम होगी। जैसे, सरकारको जब अमुक प्रकारके काम करनेके लिअे लोगोंकी जरूरत होती है, तो वह चरखा-संघ, तालीमी-संघ, ग्रामोद्योग-संघ वगैरासे मांग करती है। सरकारको जब पाली भाषाके अध्यापककी आवश्यकता होती तो वह कोसम्बीजीसे पूछती थी; प्राकृतके अध्यापक चाहिये तो वह मुनि जिनविजयजी, पं० सुखलालजी, या पं० बेचरदासजीसे पूछेगी। अुस गुरुकुल या गुरुके स्नातकोंकी सरकार या प्रजामें अैसी प्रतिष्ठा रहेगी। यही अुसकी पदवीकी मान्यता है।

अैसे विद्यापीठोका क्षेत्र सदा ही खुला रहेगा। ये जैसे सरकारी तंत्र द्वारा स्थापित विश्वविद्यालयोका स्थान नही ले सकते, वैसे ही

अुनकी वजहसे अिन विद्यापीठोके 'बरखास्त' होनेका भी कोअी कारण नही है। यह तो स्पष्ट है कि ज्यादातर विद्यार्थी तत्र-स्थापित विश्वविद्यालयोमें ही जायेंगे।

यह लिखते समय मुझे विश्वविद्यालय और विद्यापीठ अिन दो शब्दोमें से किस शब्दको पसन्द किया जाय अिस सम्बन्धमें आज जो चर्चा चल रही है अुसके बारेमें कुछ सुझाव पेश करनेकी अिच्छा होती है। यो तो 'विश्वविद्यालय' युनिवर्सिटी शब्दका शब्दानुवाद है। अिसके सिवा अुसमें मुझे कोअी सार्थकता नही मालूम होती। लेकिन यह शब्द भी अब रूढ हो गया है, अिसलिअे भले रहे। मै समझता हू कि अेफिलियेटिंग युनिवर्सिटी, रेसिडेन्शियल युनिवर्सिटी और अूपर बताअी विशिष्ट गुरुओ या गुरुकुलोकी सस्थायें—अिन तीनोंके लिअे यदि हम तीन अलग-अलग शब्द रखें तो अच्छा होगा। मेरा नम्र सुझाव है कि सरकारके चार्टर द्वारा स्थापित की हुअी रेसिडेन्शियल युनिवर्सिटीके लिअे विश्वविद्यालय शब्द मर्यादित कर देना ठीक होगा। खास गुरुकुल या गुरु किसी विषयमें यदि आरभसे लेकर अुच्चतम शिक्षा तक विद्यार्थियोको ले जाते हो और अुसका विकास करते हो—भले अुन्हें सरकारकी मान्यता प्राप्त हो या न हो—तो अुन्हें विद्यापीठ कहा जाय; और अेफिलियेटिंग युनिवर्सिटीके लिअे हम 'ज्ञानपीठ' या अैसा ही कोअी शब्द काममें लें।

अब गुजरातके लिअे सोची गअी नयी युनिवर्सिटीका स्वरूप 'विश्वविद्यालय'—रेसिडेन्शियल—जैसा ठीक है या ज्ञानपीठ-जैसा अिस विषयमें :

मुझे लगता है कि आज तो वह ज्ञानपीठ जैसा ही हो सकता है या होना चाहिये। साथ ही अुसमे कोअी विश्वविद्यालय भी हो सकता है। अहमदाबाद, बडोदा या सूरत जैसी जगहोमें कअी प्रकारके महाविद्यालय चलते हो और अुन विद्यालयोका अेक अलग मोहल्ला—प्रचलित भाषाके अनुसार अेक 'नगर'—बसे, तो अुन

सबको अेकसाथ काम करने और जोड़नेके लिअे अेक विशिष्ट नियमावली भी हो सकती है। आगे चलकर अुनमें से हरअेक यदि स्वतंत्र विश्वविद्यालय बन जाय, अपनी ही परीक्षायें ले और पदवियां दे तो भले दे सकता है। परन्तु आज तो समूचे गुजरातका अेक ज्ञानपीठ हो, यही मुझे अिष्ट मालूम होता है। यहां यह याद रखना चाहिये कि मैं जब गुजरात शब्दका अुपयोग करता हूं तो मेरी भाषामें काठियावाड़-कच्छ आदि प्रदेशोंका भी समावेश होता है। अैसे समग्र गुजरातमें भविष्यमें अैसे बीस-पच्चीस स्वतंत्र विश्वविद्यालय भी बन सकते हैं।

राजनीतिक या शासन-व्यवस्थाकी दृष्टिसे भाषावार प्रान्तरचना हो जानेके बाद ही भाषावार प्रान्तीय विश्वविद्यालय या ज्ञानपीठ स्थापित किये जाने चाहिये, अैसा मैं नहीं मानता। राजनीतिक या व्यवस्था सम्बन्धी विभाग करनेमें अनेक पहलुओं पर विचार करना पड़ता है। अुसमें क्षेत्रफल, जनसंख्या, आय-व्यय, रक्षा तथा यातायातकी सुविधायें, नदी-नाले-पहाड़ आदिकी कुदरती सीमायें आदि अनेक बातोंकी जांच करनी पडती हैं। परन्तु प्रत्येक भाषाका अैसा प्रदेश अिन सब बातोंका विचार करके नहीं बना होता। अुनके प्रदेश लोगोंकी बसाअी हुअी बस्तीके आधार पर बने होते हैं। अुनकी बिलकुल स्पष्ट सीमायें नहीं बांधी जा सकतीं। अिस कारणसे ज्ञानपीठोंका अधिकारक्षेत्र स्थूल सीमासे भी बाहर जाय — अर्थात् वह extra-territorial हो — तो अुसमें मुझे कोअी दोष नहीं दिखाअी देता। यदि और बातोंकी सुविधा हो तो 'गुजरात ज्ञानपीठ' द्वारा मान्य किया हुआ महाविद्यालय नागपुर या कलकत्तेमें भी हो सकता है और महाराष्ट्र ज्ञानपीठका बड़ोदेमें, तथा अिन दोनोंका और अिनके अलावा प्रयाग या काशीका महाविद्यालय बम्बअीमें भी हो सकता है।

तब प्रश्न अुठ सकता है कि प्रान्तीय ज्ञानपीठकी विशिष्टता क्या है?

मेरा खयाल तो यह है कि प्रान्तीय भाषाको अूचीसे अूची शिक्षाका माध्यम बनाना, अुस भाषामें किसी भी प्रकारकी विद्याका ज्ञान मिल सकने और अुसका विकास करनेकी सुविधा पैदा करना और अुस भाषाका विकास करना अुस विद्यापीठकी मुख्य विशिष्टता और क्षेत्र है। कोअी राजनीतिक दृष्टिसे बना हुआ प्रान्त द्विभाषी या विविध-भाषी हो, तो वह अिसमें बाधक बनता है यह मैं कतअी नहीं मानता। अिसमें यदि अलग-अलग युनिवर्सिटियोंके क्षेत्र अेक-दूसरे पर व्याप्त हों, तो अुसमें मुझे बाधा जैसा बिलकुल मालूम नहीं होता। गुजराती, मराठी, बंगाली, हिन्दी आदि जो-जो साहित्यिक भाषायें हैं और जिन्हें बोलनेवाले प्रजाके विशाल समुदाय हैं, अुन अुन भाषा-भाषियोंको अुनकी अपनी भाषाओंमें ही पूरी शिक्षा मिल सके अिसका खयाल रखना सरकारका, विद्वानोंका, साधन-सम्पन्न लोगोंका और प्रजाके सेवकोंका कर्तव्य है और जनताको अिन सबसे वैसी अपेक्षा रखनेका अधिकार है। अिस प्रकार गुजरातके ज्ञानपीठों, विश्वविद्यालयों या विद्यापीठोंकी विशिष्टता अुनकी शिक्षाके माध्यममें रहेगी।

अैसी प्रत्येक संस्थाकी अलग-अलग विशेषतायें भी हो सकती हैं। वे समग्र प्रान्तकी विशिष्टता, स्थानीय विशिष्टता तथा संस्थाके कार्यप्रदेश और अुद्देश्यकी विशिष्टताके अनुसार अलग-अलग होंगी। हो सकता है कि अहमदाबाद-जैसे व्यापार-प्रधान क्षेत्रमें शिक्षाके अेक अंगका अधिक विकास हुआ हो, समुद्रके पासके क्षेत्रमें दूसरे अंगका और आणन्द जैसे स्थानमें तीसरे अंगका अधिक विकास हुआ हो।

अिसमें राष्ट्रभाषा और प्रान्तीय भाषाके बीच कोअी विरोध पैदा होनेकी आवश्यकता मुझे नहीं दिखाअी देती। जहां गलत अभिमानोंका पोषण किया जाता है वहीं विरोध पैदा होता है। हरअेक अपनी मर्यादा समझे तो व्यवस्था हो सकती है।

यदि राष्ट्रभाषाको किसी अेक खास दिशामें ही खींचनेका प्रयत्न हो — जैसे, संस्कृत-प्रचुर या अरबी-फारसी-प्रचुर या कृत्रिम शब्दोंसे

भरी हुअी हिन्दी—तो संभव है कठिनाअियां पैदा हो। हां, सभी प्रान्त अपनी प्रान्तीय भाषाओंमें यह रुख अख्तियार करे तो बात अलग है। परन्तु यदि हम याद रखें कि भारतकी सभी प्रचलित प्रान्तीय भाषायें जितनी संस्कृतके निकट हैं अुसकी अपेक्षा वे अपनी रचनामें अेक-दूसरेके ही ज्यादा निकट हैं—संस्कृतसे तो अुलटे वे भिन्न हैं—तथा सबके विकासमें लगभग समान शक्तियोंने काम किया है, तो हमें अिन सभी भाषाओंका साम्य विशेष रूपमें दिखाअी देगा। यदि लिपियोंकी विविधता न होती, तो संभव है ये और भी अेक-दूसरेके निकट होतीं। अरबी-फारसी-अंग्रेजी आदि विदेशी भाषाओंका प्रभाव सभी भाषाओं पर समान रूपमें पड़ा है, अुन भाषाओंके शब्द सभी प्रान्तोंमें लगभग समान रूपमें मिल गये हैं, कभी-कभी तो संस्कृतकी अपेक्षा भी ज्यादा समान रूपमें। शुद्ध संस्कृत साहित्यसे लिये हुअे शब्द अवश्य सब भाषाओंमें समान हैं, परन्तु जो संस्कृत साहित्यमें नहीं बरते गये हैं तथा जिन्हें प्रान्तीय भाषाओंके तथा आधुनिक जीवनके विकासके दरमियान विद्वानोंने गढा है, अैसे नये संस्कृत शब्द प्रान्त-प्रान्तमें भिन्न रूपमें बने हुअे दिखाअी देंगे।

अिसलिअे जो शब्द प्राचीन संस्कृत साहित्यमें या मूल प्रान्तीय भाषामें न हों, बल्कि नये गढने हों तथा किसी विदेशी भाषामें हों लेकिन बरते न जा सकते हों, अुन शब्दोंकी रचनाके लिअे कोअी यदि निश्चित मापदण्ड तय किया जा सकता हो, तो मैं निःशंक होकर कह सकता हूं कि अुनसे प्रान्तीय और राष्ट्रीय भाषाके बीच विशेष अन्तर नहीं पड़ेगा।

मेरे अिस कथनका प्रयोजन यह है कि मेरी कल्पनामें प्रान्तीय भाषाओंके ज्ञानपीठ होते हुअे भी हर प्रान्तमें कुछ अैसे विश्वविद्यालय हो सकते हैं, जो सारे भारतके लिअे या भारतके बहुतेरे प्रान्तोंकी दृष्टिसे बनाये गये होंगे। अुनमें प्रान्तके बाहरके विद्यार्थी, अध्यापक आदि भी आते होंगे। अिसके अलावा मैं अिस बातकी भी कल्पना करता हूं

कि प्रान्तीय ज्ञानपीठोंमें भी परप्रान्तके अध्यापक बार-बार आ सकते हैं। यदि गुजरात विश्वविद्यालयमें अैसी नीति चलने लगे कि अुसमें परप्रान्तके अध्यापकों या विद्यार्थियोंके लिअे स्थान ही न हो, तो अुसे मै विचार और दृष्टिका दोष मानूगा। अिसी तरह हमारे विशाल देशमें यह हमेशा ही होता रहेगा कि हमारी प्रान्तीय भाषामें किसी खास विषयकी अुत्तम पुस्तक न हो और दूसरी किसी भाषामें हो। अुसका सबसे पहला अनुवाद राष्ट्रभाषामें ही होना संभव है। लेकिन हो सकता है अुसमें भी न हो। अुसके लिअे यदि यह कहा जाय कि वह पुस्तक पाठ्य-पुस्तक नहीं बनाअी जा सकती, तो अैसी संकीर्ण दृष्टिसे काम नही चलेगा।

अिसलिअे मेरी कल्पनाके अनुसार अुच्च विद्याके हर अध्यापक और विद्यार्थीको कमसे कम दो भाषायें तो पूर्ण रूपसे जानना ही चाहिये। अेक तो प्रान्तीय भाषा और दूसरी राष्ट्रभाषा। दोनो भाषाओमें अुसे शुद्ध लिखना और बोलना आना चाहिये। राष्ट्रभाषामें दिये जानेवाले व्याख्यान समझनेमें और अुस भाषाकी पुस्तकें पढनेमें अुसकी योग्यता आज जितनी अंग्रेजीमें है अुससे ज्यादा होनी चाहिये।

यदि हम यह बात मान लें तो राष्ट्रभाषा और प्रान्तीय भाषायें अेक-दूसरेके साथ और सहारेसे ही आगे बढती रहेंगी; यह नही हो सकता कि अेक भाषा दूसरीकी अपेक्षा बहुत ही आगे बढ जाय या बहुत पीछे रह जाय। तब यह माननेके लिअे भी कोअी कारण नही रह जायगा कि अेक प्रान्तके मनुष्योंको दूसरे प्रान्तकी संस्थामें अध्ययन, अध्यापन तथा सरकारी विभागोंमें नौकरी वगैरा करनेमें बहुत असुविधायें होंगी।

पारिभाषिक शब्द बनानेमें कौनसे शब्द परभाषाके ही रखे जाय और कौनसे बदले जाय तथा किस भाषाका आधार लेकर नये शब्द गढे जाय, यह वादविवाद कुछ अंश तक स्वाभाविक जरूर है। परन्तु यदि मुख्य सिद्धान्त निश्चित हो जाय, तो बहुत हद तक वह

आवश्यक नही है; प्रत्यक्ष रूपमें पढानेकी शुरुआत किये विना घर वैठे-वैठे पाठ्य-पुस्तकें लिखने या शब्दकोश वनानेके प्रयत्नसे अैसा वादविवाद पैदा होता है।

मेरी दृष्टिसे मुख्य सिद्धान्त ये है :

१. आन्तर-राष्ट्रीय पारिभाषिक शब्दोंको वदलनेका मोह न रखना चाहिये। अैसे शब्दोका मुख्य क्षेत्र केवल प्राकृतिक विज्ञानकी शाखायें ही है। आन्तर-राष्ट्रीय परिभाषाओमे भी कभी-कभी दोहरी शब्दमाला होती है : राष्ट्रीय अौर आन्तर-राष्ट्रीय। अुदाहरणके लिअे, कुछ रासायनिक पदार्थों, तत्त्वों, प्राणियो अित्यादिके नाम। अिनमें से कुछके लिअे अपनी-अपनी भाषाके शब्द पहलेसे ही प्रचलित है, अिसलिअे वे भी चलते है और अुनकी पारिभाषिक सज्ञा भी दी जाती है। जैसे तांवेको हम 'तावा' कहते हुअे और पारिभाषिक अर्थमें निस्संकोच भावसे अुसका अुपयोग करते हुअे भी अुसकी पारिभाषिक संज्ञा (Cupram-Cu)का अुपयोग करेंगे। परन्तु अेल्युमिनियमके लिअे नया देशी शब्द नही वना है अौर वह शब्द प्रचलित हो गया है, अिसलिअे यदि अुसे वदलनेका प्रयत्न किया जाय तो वह अनुचित माना जाना चाहिये। अिसी तरह सोडियम अौर सोडा शब्द अग्रेजी होने पर भी हमारे देशमें प्रचलित हो गये है। अुन्हे गुजराती या हिन्दी समझकर ही वरतना चाहिये, यद्यपि अुनकी आन्तर-राष्ट्रीय संज्ञा (Natrum-Na) भी रहेगी ही। अिसी तरह विज्ञानकी दूसरी शाखाओंमें भी होना चाहिये।

२. अूपरके अुदाहरणोंसे यह भी फलित होता है कि जो विदेशी शब्द हमने पूरी तरह पचा लिये है, जो जो मनुष्य अुन चीजोंको वरतते या देखते है वे अुन्ही शब्दोंसे अुन्हे पहचानते हैं, अुनके लिअे अव भिन्न शब्द गढ़ने और प्रचलित करनेका मिथ्या मोह हमें छोड़ देना चाहिये। यह सिर्फ प्राकृतिक विज्ञानकी शाखाओको ही लागू नही होता, वल्कि जीवनके सारे व्यवहारोमें वरते जानेवाले शब्दोको लागू होता है। जैसे, विल, रसीद (रिसीट), वाअुचर, कम्पनी, शेअर,

डिविडण्ड, थरमॉमीटर, ऑपरेशन आदि सैकडो शब्द है। जिनमे कुछके देशी पर्याय भी साथ-साथ प्रचलित है। वे और विदेशी शब्द दोनो विकल्प रूपमें वरते जा सकते है, और यदि अिन दोनोंके स्वरूपमें कुछ भेद हो तो अेकके लिअे अेक और दूसरेके लिअे दूसरा भी निश्चित किया जा सकता है। जैसे (गुजराती भाषामें) 'आंकड़ा' शब्द लीजिये। यह विल, अिन्वॉअिस (वीजक), वाअुचर तीनो शब्दोंके लिअे काममे लिया जाता है। लेकिन अिन्वॉअिसके लिअे 'भरतियु' (वीजक) शब्द ज्यादा निश्चित है। तव अिस प्रकारके आधारोंके लिअे सामान्य शब्द 'आंकडा' रख कर अुसके भेदोंके लिअे विल, अिन्वॉअिस अथवा 'भरतियु' तथा वाअुचर काममें लिये जा सकते है। लेकिन अिन सवके लिअे या अिनमें से किसी अेकके लिअे 'आधार-पत्र' शब्द वनाना गलत मोह कहा जायगा।

३ कोअी शब्द फारसी, अरवी या अग्रेजीका है, अिसीलिअे अुसे वदलनेकी मनोवृत्ति ठीक नही। जो शब्द हमारी भाषामे घुल-मिल गये है, अथवा जो वस्तुयें या भाव ही अैसे विशिष्ट और नये है कि अुनके लिअे हम जो नये शब्द गढेंगे वे कृत्रिम और अुनके विदेशी नामोंके जैसे ही नये होंगे, अुनके लिअे अुन विदेशी शब्दोको अपनानेमें ही भाषाकी सेवा है। जैसे, पावर, फोर्स, अेनर्जी। जहा ये शब्द पदार्थ-विज्ञानके पारिभाषिक शब्दोंके रूपमें नही, वल्कि सामान्य साहित्यमें अुपयोगमें लिये जाते है, वहा वे अेक-दूसरेके पर्याय-जैसे भी होते है, और अुनका अर्थ हमारी भाषामें जोर, दम, वल, ताकत, शक्ति, अुत्साह, वीर्य आदि शब्दोंसे अच्छी तरह वताया जा सकता है। परन्तु अिन छ-सात देशी शब्दोंमें से किस आधार पर अेक या दो शब्द 'पावर' के लिअे, दूसरे अेक-दो शब्द 'फोर्स' के लिअे और तीसरे 'अेनर्जी' के लिअे निश्चित करेंगे? और अैसा करनेमें यदि कुछ गड़वड़ी पैदा होनेकी सम्भावना हो, तो क्या विल्कुल नये ही शब्द गढ़ेंगे? जैसे, प्रवल या सुवल, प्रशक्ति, प्रोत्साह, प्रवीर्य आदि?

अिसकी अपेक्षा अधिक अिष्ट तो यह है कि पावर, फोर्स, अेनर्जीको ही पारिभाषिक शब्दोकी तरह रखा जाय और निकम्मी शब्द-वृद्धिकी मेहनतसे बचा जाय।

४. यह ठीक है कि नये शब्दोकी रचनाके लिअे हमें संस्कृतका आश्रय लेना ही विशेप अनुकूल होगा। परन्तु अिस कारणसे जो फारसी, अरबी या अंग्रेजी शब्द हमारी भापामें प्रचलित हो गये है अुन्हे बिना कारण बदलनेमें मुझे लाभ नही दिखाअी देता। और संस्कृतका आश्रय लेनेका मतलब यह न होना चाहिये कि संस्कृतके व्याकरण और अुसकी क्लिष्टताका भी आश्रय लिया जाय, या फिर अैसे शब्द बनाये जायं जो अपने-आप समझमें न आ सकें। अैसे नये शब्द बनानेकी अपेक्षा तो किसी भापाका प्रचलित शब्द दाखिल करना ज्यादा अच्छा माना जायगा।

प्रान्तकी बड़ी अदालतोंकी और दफ्तरोकी भापा कौनसी हो, अिस सम्बन्धमे कठिनाअियां पेश की जाती है। मेरी रायमें साधारणतया वह भापा प्रान्तकी भापा ही होगी। बड़ी बडी अदालतोका सब काम प्रान्तीय भापामें ही चलेगा, यहां तक कि फैसला भी अुसी भापामें दिया जायगा। सभी फैसलोकी फेडरल कोर्टमें अपील नही की जाती और और न सब 'लॉ रिपोर्ट्स' में प्रकाशित ही करने पड़ते है। अैसे महत्त्वके फैसलोंका राष्ट्रभापामें अनुवाद किया जा सकता है। आज भी अनेक दस्तावेजों, छोटी अदालतोंके फैसलो वगैराका अंग्रेजीमें अनुवाद करके ही बडी अदालतोमें कारंवाअी की जाती है। वही राष्ट्रभापामें भी हो सकता है। न्यायाधीशोको यह अधिकार भी दिया जा सकता है कि वे जिस फैसलेको राष्ट्रभापामें देना अुचित समझें, अुसे राष्ट्रभापामें भी दे सकते है। परप्रान्तके नियुक्त किये हुअे न्यायाधीशोंको वैसा करनेकी छूट अवश्य दी जा सकती है। अुनके लिअे प्रान्तकी भाषा समझना काफी होगा।

प्रान्तीय दफ्तरोकी व्यवस्था भी अिसी प्रकार होगी। अगर अंग्रेजी हुकूमतके दिनोमें अंग्रेजी और प्रान्तीय भाषाकी जोडी चल सकती थी, तो प्रान्तीय भाषा और राष्ट्रभाषाकी जोडी तो अुससे ज्यादा अच्छा काम कर सकती है।

अिस कार्यमें जो बडी बाधा है वह प्रान्तीय भाषा नहीं, बल्कि प्रान्तीयता है, अपने प्रान्तकी मिथ्याभिमानी अस्मिता है। अिस मामलेमें प्रान्तमें स्थिर रूपसे रहनेवाले लोगोको व्यापार, धन्धे, नौकरी वगैराके लिअे अनेक प्रान्तोमें घूमनेवाले लोगोंसे विशाल दृष्टि ग्रहण करनी चाहिये। मेरे पास अैसे कुछ पत्र आते है, जिनमें प्रान्तीय संकुचिततासे अूबकर सभी प्रान्तीय भाषाओको हटाकर सबके लिअे राष्ट्रभाषाको ही मातृभाषा बनाने तककी हिमायत की जाती है। मैने देखा है कि अिन पत्र-लेखकोमें अधिकतर गाधीवादी, समाजवादी या साम्यवादी नहीं होते, बल्कि गुजरात-काठियावाडके भिन्न-भिन्न प्रान्तोमें व्यापार-धन्धा करनेवाले, या दक्षिण भारतके भिन्न-भिन्न भागोमें नौकरी करनेवाले लोग होते है। जिसे जगम जीवन बिताना होता है, वह अेक ही स्थानका बहुत ज्यादा अभिमान नही रखता।

जो आज गुजराती बोलते है, अुनके पूर्वज गुजराती ही बोलते थे अैसा नही कहा जा सकता। गुजरातके ही राजाओमें जिनके नाम हम अभिमानके साथ लेते है अुन चावडा और सोलकी राजपूतोकी भाषा कौनसी होगी सो भगवान जाने! धीरे-धीरे वह गुजराती बनी। जो यह कह सकें कि अुनके पूर्वज कमसे कम पाच हजार वर्षोंसे गुजरातमें ही रहते आये है, वे अपने अुन पूर्वजोकी भाषाके कितने शब्द आज समझ सकेंगे यह कहना कठिन है। भाषाओका स्वरूप अिस प्रकार अनजाने ढंगसे बदलता ही रहता है। दो सौ या पाच सौ वर्षोमें भाषामें अितना परिवर्तन हो जाता है, मानो पुरानी भाषा मर गअी और अुसकी जगह नअी आ गअी है। अिसलिअे मेरी नम्र रायमें हमें यह मिथ्याग्रह नही रखना चाहिये कि हमारे जो वगज

परप्रान्तमे स्थायी रूपमे वसे वे अपने प्रान्तकी भापा न छोडें। मेरी रायमें श्री मावलंकर गुजराती है। मै गुजराती हूं, लेकिन मेरी भतीजी कुमारी तारा महाराष्ट्रीय है; और मध्यप्रान्तके अर्थमत्री श्री दुर्गाशकर मेहता है तो खेड़ावाल ब्राह्मण, फिर भी वे महाकोशलके हिन्दी-भापी ही है। काकासाहव वहुभापी है। गुजरात, महाराष्ट्र, या हिन्दी प्रान्त अुन्हे अपना न मानें, तो वह अुनकी सकुचितता ही मानी जायगी।

हम विशाल दृष्टिसे गुजरातकी सेवा करे, और अुसके फल समग्र भारतके और संभव हो तो समग्र मानवजातिके चरणोमें अर्पण करे। अैसे गुजरातीके लिअे यह भी कहा जा सकता है कि 'जहा अेक भी गुजराती रहता है, वहा सदा ही गुजरात वसता है', और यह भी कहा जा सकता है कि वह गुजराती सर्व जगतका देशजन है। वह जिस समय जहा वसता है, अुस समय वहाकी प्रजाका पूरा सेवक और हित-चिन्तक रहता है। गांधीजीको जन्म देकर सचमुच गुजरातने अैसे गुजराती पैदा कर दिखाये है। गुजरात अैसे गुजराती सदा ही पैदा करता रहे!

अन्तमें आपके निमत्रणके लिअे मै आप सवका आभारी हू। यदि जिस लम्बे लेखसे आप अूव गये हों तो मुझे क्षमा करे। गुजरात विद्यासभाका भविष्य अुज्ज्वल हो!

वम्वअी, २७–११–'४८

शताव्दी व्याख्यानमाला — गुजरात विद्यासभा

राष्ट्रीय शिक्षा*

राष्ट्रीय शिक्षाका अर्थ क्या है? राष्ट्रीय शिक्षामें ये निश्चित वस्तुअें होनी ही चाहिये और अितनी नही होनी चाहिये, अैसा विधि-निषेधात्मक आलेख आप तैयार कर दें। साथ ही राष्ट्रीय शिक्षा और शुद्ध शिक्षाके बीच यदि कुछ अन्तर हो तो वह भी बतलावें।

जुलाअी १९२७ में अुडीसा, सिंध और गुजरातमें बाढ़से बहुत नुकसान हुआ। लाखों मनुष्य आफतमें फस गये। अुस संकटको दूर करनेमें अुडीसाका प्रयत्न बहुत ही थोडा माना जायगा। सिंधमें अभी ही सकट-निवारणका काम शुरू हुआ है। गुजरातमें किस प्रकारका प्रयत्न हुआ वह हम सब जानते है। अतिवृष्टिके समय और अुसके बाद जनताने अपने सकट किस प्रकार धीरज और परस्पर सहकारसे सहे और अुसके निवारणके लिअे किस प्रकारकी व्यवस्था तेजीसे की, वह हम देख ही चुके है। जनता सरकारका मुह देखती नहीं बैठी। सरकार सकट-निवारणकी तैयारी करे अुसके पहले ही अुसने अपनी तैयारी कर ली। जब सरकार मदद देनेके लिअे आगे आअी, तब अुसे प्रजाकी व्यवस्थाके मारफत ही अपनी मदद देनेमें विशेष सुविधा और बुद्धिमानी मालूम हुअी और जनताकी व्यवस्थाको स्वीकार करना पडा।

(देशी राज्योंको छोडकर) अुड़ीसा, सिंध और गुजरातकी सरकार अेक ही है। लेकिन हम देखते है कि सरकारकी ओरसे जो राहत गुजरातको मिली, वह दूसरे प्रान्तोंको नहीं मिली। अिसका कारण यह नहीं कि सरकारकी गुजरात पर कोअी विशेष कृपादृष्टि है, परन्तु

* विद्यापीठ व्याख्यानमालामें ता० १५–१–'२७ को हुअे प्रश्नोत्तर।

गुजरातकी जनताकी राष्ट्रीय प्रगति अितनी हो गयी है कि अिस मामलेमें सरकारको जनताकी मांग स्वीकार करनी ही पडी। गुजरातमें भी देशी राज्योंमें — वडोदा जैसे आगे बढ़े हुओ माने जानेवाले राज्यमें भी — जनताका संकट दूर करनेके लिअे अन्य स्थानोंकी तुलनामें कम प्रयत्न किया गया, अैसा कहा जायगा। किसी किसी राज्यने तो कुछ भी नहीं किया। निष्ठुर बनकर तमाशेकी तरह जनताके कष्ट देखता रहा। वड़ोदा राज्यमें भी जितनी राहत वड़ोदा प्रान्तने प्राप्त की, अुसके मुकाबले कड़ी प्रान्तको बहुत ही थोड़ी और देरसे मिली। अिसका कारण यही है कि देशी राज्योंकी प्रजामें राष्ट्रीय प्रगति कम हुओी है, और वडोदा राज्यमें वडोदा प्रान्तकी अपेक्षा कड़ी प्रान्तमें सार्वजनिक कार्यकर्ताओं और लोकमतकी शक्ति कम है।

राष्ट्रीय शिक्षा वही कही जा सकती है, जिससे राष्ट्रीय प्रगति सिद्ध हो, जिससे जनताको अपने काम अपने हाथों चलानेकी शक्ति प्राप्त हो।

सरकार या कुछ नेता अच्छे या बुरे नियम बना दें और अुन्हें जनता चुपचाप या थोड़ी-बहुत चिल्ल-पों मचानेके बाद स्वीकार कर ले, अुससे जनता शिक्षित नहीं मानी जायगी। परंतु जनता खुद ही अपने नियम पसन्द करके अुन पर अमल करने लगे और सरकारको वे नियम अुसी रूपमें स्वीकार करने पड़ें, अैसी स्थिति निर्माण करनेवाली शिक्षा ही राष्ट्रीय शिक्षा है।

अुदाहरणार्थ, जनताको अैसा लगे कि हमारे यहां दियासलाओीका अुद्योग होना चाहिये, और अुसके लिअे लोकमत अितने व्यवस्थित ढंगसे तीव्र बने कि कोओी भी व्यापारी विदेशी दियासलाओी बेच ही न सके, तो अुस आन्दोलनमें राष्ट्रीय शिक्षाका अंग समाया हुआ होना चाहिये। अिस तरह जनता सिर्फ स्वराज्यकी मांग ही करती न बैठेगी, बल्कि अपने आप देशका बहुतसा कारबार चलाने लगेगी। जिस रीतिसे यह सब होगा, अुसे राष्ट्रीय शिक्षा कहेंगे।

अैसा न माना जाय कि यह काम तुरन्त हो जायगा। अिसके लिअे वारवार तीव्र आन्दोलन करने होगे। परदेशी या निरकुश देशी सरकारको वशमें करने या पदभ्रष्ट करनेके लिअे आखिरी कदम तीव्र सघर्षका ही होगा। वह या तो रक्तपातहीन होगा या रक्त-पातवाला होगा। परतु अुसके पहले यदि जनता अपना अधिकतर कारोवार स्वय चलाने लग गअी होगी तो ही आखिरी कदममें निश्चय-पूर्वक यश मिलेगा। अिसलिअे जनता अपने काम स्वय ही सभालने लगे, यह राष्ट्रीय शिक्षा है।

यदि हम पिछला अितिहास देखें तो भी मालूम होगा कि राष्ट्रीय शिक्षाका विचार स्वराज्यके प्रश्नमें से ही पैदा हुआ है। सरकारने वंग-भंग किया, मुसलमानोको धोखा दिया, रॉलैट अेक्ट वनाया, जलियावाला वागका हत्याकाड किया। जनताने टीका-टिप्पणी की, अुत्तेजित हुअी, तीव्र रोप प्रकट किया, परंतु अुसने देख लिया कि वह खुद असहाय है। सरकारने आज अनेक युवकोको जेलखानोमें डाल रखा है, साअिमन कमीशनको भेजा है। जनता टीका-टिप्पणी कर रही है, गुस्सेसे वडवडा रही है, तडप रही है। परतु जिस तरह मौतसे चिढकर स्त्रिया अपनी ही छाती-माथा कूटने लगती है, अुसी तरह अेकाध दिनके लिअे सूतक पालकर जनता भी अिसके खिलाफ अपनी चिढ जाहिर करती है, लेकिन अन्तमें देखती है कि वह स्वयं असहाय है।

जनताको अिस असहाय स्थितिसे वाहर निकलना है। राष्ट्रीय शिक्षाका विचार अिसी भानमें से अुत्पन्न हुआ है। और वारवार लहरें अुठें या वैठें, तो भी जव यह भान नये सिरेसे होने लगता है तव वह अुसी असहाय स्थितिसे निकलनेके खयालसे पैदा होता है।

अिस असहाय स्थितिसे प्रजाको जिस रीतिसे निकाला जाय वह राष्ट्रीय शिक्षा है।

वेशक अिसमें चरखा मुख्य है। केवल आर्थिक दृष्टिसे ही नहीं बल्कि प्रजाके सामाजिक और राजनीतिक सगठनकी दृष्टिसे भी। यह प्रवृत्ति हमें राष्ट्रीय सिविल सर्विस दे रही है और देगी। अिसके आसपास अनेक मंडल, संस्थायें और प्रवृत्तियां खडी की जा सकती हैं, परंतु अिसके विना अेक भी प्रवृत्ति अितनी व्यापक नहीं वन सकती।

राष्ट्रीय शिक्षाका दूसरा अग अखाड़े हैं। यह अग सिर्फ अिसी-लिअे महत्त्वका नहीं है कि देशकी शारीरिक संपत्ति वढनी चाहिये, बल्कि अिसलिअे भी कि देशमें आवश्यक क्षात्रवृत्तिका विकास होना चाहिये।

राष्ट्रीय शिक्षाका तीसरा अंग ज्ञान-प्रचार है। अिसमें छात्रालय, पाठशाला, रात्रिशाला, वाचनालय आदिका समावेश होता है।

दलित जातियोंकी सेवा और स्त्री-शिक्षा अंशतः ज्ञान-प्रचारके अग है और अंशतः राष्ट्रीय शिक्षाके स्वतत्र अंग हैं। क्योंकि अिनमें केवल ज्ञान-प्रचारका ही प्रश्न नहीं है, बल्कि अिन वर्गोंके साथ होने-वाले अनेक प्रकारके अन्यायोंका प्रतिकार करनेका भी प्रश्न है। अिसलिअे अिसे मैं अलग चौथे अगके रूपमें गिनता हूं।

यह तो हुआ राष्ट्रीय शिक्षाका विधायक पहलू। अब हम अिसका निषेधात्मक पहलू लें।

देशको जिस असहाय स्थितिसे वाहर निकलना है, अुसके साथ जिस शिक्षाका सबंध न हो वह राष्ट्रीय शिक्षा नहीं है। अुसमें जिसे हम वहुश्रुतता या (कुछ अनिश्चित रूपमें) संस्कारिता कहते हैं वह भले हो, परतु वह राष्ट्रीय शिक्षा नहीं है। और अिस प्रकारके साहित्य, सगीत या कला संस्कारी साहित्य, संगीत आदि भले हो, किन्तु वे राष्ट्रीय नहीं हैं।

अुदाहरणके लिअे, यदि कालिदासका शाकुन्तल नाटक, लोकगीत या कवि नानालालके 'रास' देशको अपनी असहाय स्थितिसे वाहर

निकलनेमें कुछ मदद न कर सकें, तो वे राष्ट्रीय साहित्य नहीं है। और यदि जुगतराम दवेकी सीधी-सादी रचना 'आवळानु गाडु' (अंधेकी गाडी) जिस दिशामें विचारोंको प्रेरणा दे तो वह राष्ट्रीय साहित्य है। रवीन्द्रनाथ टागोरका 'अचलायतन' तो राष्ट्रीय साहित्य हो, परंतु 'गीताजलि' अुत्कृष्ट होते हुअे भी सभव है राष्ट्रीय साहित्य न हो।

नदलाल बोस या रविशंकर रावलके चित्र यदि अुक्त अुद्देश्यकी दिशामें ले जानेवाले न हो तो वे राष्ट्रीय कला नहीं है।

ताजमहल, देलवाड़ाके मदिर या अजन्ताकी गुफाये यदि हमारा आजका प्रश्न हल करनेमें कुछ योग न दें, तो वे राष्ट्रीय कलाके नमूने नहीं है।

मैं यह नहीं कहता कि जो राष्ट्रीय नहीं है वह सब बुरा ही है। परंतु अुसमें जो कुछ अच्छा होगा अुसका स्थान राष्ट्रीय शिक्षासे भिन्न शिक्षामें होगा। केवल राष्ट्रीय शिक्षामे अुसका आवश्यक स्थान नहीं रहेगा।

शुद्ध शिक्षा और राष्ट्रीय शिक्षाके बीच मुझे विरोध नहीं दिखाओ देता। यदि शुद्ध शिक्षा राष्ट्रीय शिक्षाका साधन हो, तो मेरी समझमें शुद्ध शिक्षा राष्ट्रीय शिक्षा देनेकी सबसे सच्ची पद्धति है। सबसे सच्ची पद्धतिका अर्थ है वह पद्धति जो भावना और बुद्धिकी सशुद्धिके नियमोंका अवलोकन करके और शिक्षकोंके परपरागत अनुभवोंका विचार करके अैसी अनुकूलता पैदा करती है, जिससे छोटी या बड़ी अुम्र-वाली असस्कारी प्रजा सस्कारी बने। राष्ट्रीय शिक्षा भी जब शुद्ध शिक्षा-शास्त्रीके द्वारा दी जायगी, तभी अुसके अुत्तम परिणाम आयेंगे। अिसलिअे राष्ट्रीय शिक्षामें शुद्ध शिक्षा-शास्त्रीकी जरूरत है।

राष्ट्रीय शिक्षामें प्रजाके प्रश्नोंका विचार होता है। शुद्ध शिक्षा-शास्त्रीको यह सोचना चाहिये कि ये प्रश्न अुत्तम ढगसे किस प्रकार हल किये जाय। जैसे जमीनका मालिक यह तय करे कि मुझे अमुक माप और सुविधाओंवाला मकान चाहिये तो अुसे बनाना कुशल

मिस्त्रियोंका काम है, वैसे ही शुद्ध शिक्षा शिक्षाकी अिंजीनियरीका शास्त्र है। राष्ट्रीय शिक्षामें अुस शास्त्रका अुपयोग वांछनीय माना गया है।

नवजीवन, ५–२–१९२८

४

शिक्षा पर राज्यका अंकुश

क्या शिक्षा पर राज्यका अंकुश होना चाहिये?

१९०५ के वंग-भंगके बाद हिन्दुस्तानमें जो नअी जाग्रति आयी, अुसमें से स्वराज्य, राष्ट्रीय शिक्षा, स्वदेशी और अंग्रेजी मालका बहिष्कार — यह चतुर्विध कार्यक्रम पैदा हुआ। अंग्रेजोंने जो शिक्षा-प्रणाली शुरू की थी, अुससे असंतुष्ट रहनेवाला अेक दल तो अिससे पहले भी था। अुपरोक्त आन्दोलनके बाद यह असंतोष अितना तीव्र हो गया कि वह राष्ट्रीय क्षेत्रमें भी आ गया।

१९०५ से १९१५ के दरमियान यह आन्दोलन बिलकुल बन्द तो नहीं हो गया, परंतु बहुत मंद जरूर पड़ गया। जिस असंतोषसे अिसे पोषण मिला था, अुसके वंग-भंग रद्द हो जाने पर मिट जानेके कारण यह परिणाम आना स्वाभाविक ही था।

१९१५ के आसपास गांधीजी हिन्दुस्तानमें आये, तबसे राष्ट्रीय शिक्षाके प्रश्नने फिर जोर पकड़ा। गांधीजीने राष्ट्रीय शिक्षाकी स्वतंत्र शाला और योजना खड़ी की, कुछ सिद्धान्त निश्चित किये और काकासाहब आदि कुछ तेजस्वी, विद्वान, अुत्साही, सूझ-बूझवाले और स्वराज्यकी भावनासे ओतप्रोत नवयुवकोंका दल अिकट्ठा करके नअी शिक्षाकी नींव डाली।

अुन्हींके प्रभावसे कुछ ही समयमें सारे देशमें असहयोगका युग आया और अुसीके साथ राष्ट्रीय शिक्षाकी प्रचण्ड बाढ़ आयी। अनेक प्रान्तोंमें राष्ट्रीय विद्यापीठोंकी स्थापना की गयी। अुनमें अुतार-चढ़ाव

तो बहुत आये, परंतु अुन्होने कुछ अैसे सिद्धान्त प्रचलित कर दिये जिन्हें सरकारी सस्थाओको भी धीरे धीरे मान्य करना पड़ा।

अैसा कहा जा सकता है कि असहयोगके अुस जमानेमें हमारे प्रान्तमें गाधीजीके बाद दूसरे नंबर पर सभी राष्ट्रीय वृत्तिके शिक्षा-शास्त्रियो, लोगो और विद्यार्थियोंके माने हुअे नेता काकासाहब थे। राजनीतिक कार्यकर्ता तथा कुछ पुरानी परपराके शिक्षा-शास्त्रियोने अुन्हें भले अितना न माना हो, परंतु शिक्षण-सस्थाओ, सामान्य लोगो और तरुण विद्यार्थियोंके लिअे वे लगभग गुरु जैसे ही थे। नानाभाअी, गिजुभाअी, हरभाअी, नरहरिभाअी, मुझे और दूसरे कअी नामी अध्यापको और शिक्षकोको शिक्षाके क्षेत्रमें नअी नअी वस्तुअें और दृष्टिया देनेवाले वे ही थे। अुस कालमें हममें से कुछ लोग स्वतंत्र रूपसे लिखते दिखाअी देते थे, किन्तु हमारे लेखोमें बहुत-कुछ गाधीजी या काकासाहबके विचारोकी ही प्रतिध्वनि रहती थी।

काकासाहबने अुस जमानेमें जिस सिद्धान्तका प्रतिपादन किया, वह यह था कि स्वराज्यमे भी शिक्षा स्वतत्र यानी राज्यके अकुशसे मुक्त रहनी चाहिये। मै मानता हू कि गाधीजीने भी अुसका समर्थन किया था। 'मानता हू' कहनेका कारण अितना ही है कि काकासाहब और अुनकी छत्रछायामें हम लोग जितने जोरसे अिस सिद्धान्तका प्रतिपादन करते थे, अुतने जोरसे अुसका प्रतिपादन करनेवाला गाधीजीका कोअी वचन शायद न खोजा जा सके। यह भी सभव है कि काकासाहब आज अुसका अुतने ही जोरसे प्रतिपादन न करें।

आज जो यह प्रश्न अुठाया जाता है अुसका अुद्गम-स्थान कहां है, यह बतलानेके लिअे अितना पूर्व-वृत्तान्त मैंने कहा। अब यह बता दू कि अितने वर्षोके अनुभवके बाद अुन विषयमें आज मुझे क्या लग रहा है।

शिक्षा पर राज्यका अंकुश हो या न हो और हो तो कितना हो, यह कोअी स्वतंत्र सिद्धान्त नही है। वह अनेक परिस्थितियो पर आधार रखता है।

अेक जमानेमें राज्य शिक्षा पर अंकुश रखता ही नही था। राज्यकी अैसी कोशिश ही नही रहती थी। अुस समय यह नही माना गया था कि प्रजाकी शिक्षाके वारेमें राज्यकी कोअी जिम्मेदारी है। राज्यका अधिकार यह था कि वह प्रजा पर कर लगाये तथा परदेशोंके साथ लड़ाअी करे, और अुमका कर्तव्य यह था कि वह देशकी रक्षा करे, कुछ न्यायदान तथा पुलिस आदिकी व्यवस्था करे, और प्रजामें यदि कहीं गभीर झगड़े अुठ खड़े हों तो अुन्हें दवाये। शेप सब वातोंमें जनताको पूरी स्वतंत्रता थी। सिक्के वनानेकी स्वतंत्रता भी जनताको बहुत समय तक थी। शिक्षाके वारेमें प्रजाकी अिच्छा हो तो वह शिक्षा ले, न अिच्छा हो तो न ले — निरक्षर रहे। राज्यका द्रोह करनेकी शिक्षा न दे तो अुसे पसंद आये वैसी और अुस ढंगसे वह शिक्षा ले सकती थी। जैसे व्यापार, खेती, मजदूरी, आदिके मम्बन्धमें राज्य हस्तक्षेप नही करता था, अुसी तरह शिक्षाके क्षेत्रमें भी नहीं करता था। कोअी वड़ा सम्राट् अथवा वादशाह, दूसरे हाकिम या जागीरदार अपनी अिच्छासे शिक्षा-संस्थाओंको दान दें या विद्वानोंकी कद्र करें, तो वह अुनका शौक माना जाता था, कर्तव्य नहीं। हां, दान देनेवालोंकी प्रशंसामें कवि और चारण स्तोत्र वनाते थे।

धीरे-धीरे अिन विचारोंमें परिवर्तन हुआ। राज्यके कर्तव्यके क्षेत्रोंके साथ अुसके अधिकारका क्षेत्र भी वढता ही गया। राज्यकी वागडोर प्रजाके प्रतिनिधियोंके हाथमें आती गअी और साथ ही नित्य जीवनकी अनेक संस्थायें भी। कोअी अपढ़ न रहे, कोअी भूखा या वेकार न रहे, कोअी राष्ट्र-घातक धन्धा न करे, राष्ट्र-पोषक धन्धोंको योजनापूर्वक अुत्तेजन मिले, प्रजाहितके कुछ व्यवसाय राज्यकी ओरसे ही चलाये जायं, मजदूरोंको पूरी मजदूरी, आवश्यक आराम, अत्यधिक परिश्रमसे मुक्ति आदि मिले, चीजें वनानेवालोंको पूरी कीमत मिले, प्रजाको चीजें वहुत महंगी न मिले आदि आदि सैकड़ों वातोंकी जवावदारी राज्यके सिर वढती ही गअी। अिसके परिणामस्वरूप राज्यके

महकमे — कारखाने बढ गये। अेक ओर लोकशाही बढी। लेकिन लोकशाही बढी अिसलिअे नौकरशाही और निष्णातशाही भी बढ़ी। दूसरी ओर अुसीके परिणामस्वरूप कुछ हद तक व्यक्तियो और छोटे-छोटे समूहोका स्वातन्त्र्य भी घटा। यदि राज्य पर प्रजाको शिक्षित और संस्कारी बनानेकी जवाबदारी ही न हो, तो आप किस तरह पढाते हैं, क्या पढ़ाते हैं आदि बातोमें हस्तक्षेप करनेका अुसे कोअी प्रयोजन ही न रहे। यदि राज्य विदेशी, निरंकुश या जुल्मी हो तो वह ज्यादासे ज्यादा यही ध्यान रखेगा कि आप अैसा कुछ न पढ़ावें जिससे अुसका अस्तित्व खतरेमें पडे। यदि आप अुसके अनुकूल शिक्षा दें, तो वह कुछ दान या ग्रान्ट भी देगा।

अंग्रेजी राज्य यदि साधारण विदेशी राज्य होता — अुदाहरणार्थ जैसा अेक समय गुजरातमें गायकवाड़का राज्य माना जाता था — तो वह भी शिक्षामे अिससे ज्यादा हस्तक्षेप नही करता। परन्तु अुसकी स्थिति विशेष प्रकारकी थी। वह बहुत ही दूर देशसे राज्यका सचालन करता था। अुसे अैसी स्थितिमें राज्य चलाना था जिसमें अुनके मुट्ठीभर अधिकारियोंके मातहत काम करनेवाले सारे कर्मचारी जीती हुअी प्रजामें से ही थे। अुनकी भाषामें सिर्फ मराठी-गुजराती जैसा प्रान्तीय अन्तर ही न था, वह बिलकुल विलक्षण थी। अुसे अपनी संस्कृति और सभ्यताका अभिमान और अुसे हिन्दुस्तानमे दाखिल करनेकी अभिलाषा भी थी। अिसलिअे अुसे अपनी जरूरतके अनुसार और अपने लिअे अनुकूल शिक्षण-तन्त्र चलानेकी आवश्यकता मालूम हुअी। परन्तु अिस तरहकी शिक्षा भी सारे देशको देनेकी अुनकी जवाबदारी है, यह अुनने नही माना था। अिसलिअे यदि जनता सरकारी अंकुशसे स्वतंत्र राष्ट्रीय शिक्षणकी संस्थायें चलावे, तो अुसमे अुसे कोअी आपत्ति नहीं थी। परन्तु जनता कअी कारणोंसे सरकारी शिक्षाकी ओर ही आकर्षित हुअी। अिसलिअे जनता स्वयं भी अपनी शिक्षा-प्रवृत्तियां अैसी ही चलाने लगी जिनका मेल अंग्रेजी शिक्षण-पद्धतिसे बैठ सके।

अिसी बीच युरोपमें यह भावना बढने लगी कि शिक्षाकी जिम्मेदारी सरकारकी है और अुसकी प्रतिक्रिया अिस देशके शासनकर्ताओं और प्रजा दोनो पर हुअी। राज्य शिक्षा-प्रसारकी जिम्मेदारी समझने लगा और प्रजा अिस जिम्मेदारीको पूरा करनेमें होनेवाली ढील पर सरकारकी टीका करने लगी तथा असन्तोष जाहिर करने लगी। नतीजा यह हुआ, और वह स्वाभाविक था, कि जो शिक्षा राज्यको अनुकूल मालूम हुअी वही प्रजाको भी अनुकूल मालूम हुअी, और वह बढने लगी। वह बढ़ती गअी, फिर भी कभी अितनी न फैल पाअी कि जनताकी विशालताके प्रमाणमें अुसे कोअी महत्त्व दिया जा सके।

फिर भी, वह जितनी फैली अुतनी राज्यकी दृष्टिसे ही फैली थी और राज्य विदेशी था, अिसलिअे अुस शिक्षाने पढ़े-लिखो और जनताके बीच दीवार खडी कर दी। अिससे देशके विचारशील वर्गमें यह भावना पैदा हुअी कि यह शिक्षा राष्ट्रीय नही है। अिस प्रकार राष्ट्रीय-शिक्षा-वादका जन्म हुआ। अुसकी जड़में राजनीतिक असन्तोष तो था ही, अिसलिअे अुसके बारेमें शासनकर्ताओंका यह मत रहा कि राष्ट्रीय शिक्षा यानी अंग्रेजी-राज्य-विरोधी शिक्षा। अिस कारणसे अुसे राज्यकी ओरसे प्रोत्साहन नही मिला; अितना ही नहीं, अुस पर कड़ी नजर भी रखी जाने लगी। बेशक, वह राज्यके विरोधियोंका कार्यक्रम था, अिसलिअे अुस शिक्षाका अेक संस्कार पढ़नेवालोंके मन पर राजद्रोहके रूपमें तो पड़ता ही था।

अिस प्रकार सरकारी शिक्षा बनाम राष्ट्रीय शिक्षा जैसे दो पंथ बने।

हम यह न भूलें कि राष्ट्रीय-शिक्षा-वादका निमित्त कारण विदेशी राज्य और अुससे मुक्त होनेकी अिच्छा थी।

बादमें धीरे-धीरे शिक्षा-विभाग प्रजाकीय (गैर-सरकारी) नेताओंके हाथमें आया, भले हम अुन्हें जनताके चुने हुअे प्रतिनिधि न कहें। अब सरकारी शिक्षा यानी विदेशी-संचालित शिक्षा और अिस-

लिअे अराष्ट्रीय शिक्षा — यह आक्षेप करनेका अधिकार न रहा। अच्छी हो या निकम्मी, फिर भी वह प्रजाकीय शिक्षा ही बनी। १९३५ के कानूनके अमलमें आनेके बाद वह विभाग फिर चुने हुअे प्रतिनिधियोंके हाथमें ही आया। (अुसमें भी यदि कोअी कमी रह गअी हो तो वह अब बिलकुल पूरी हो गअी है।)

यह विभाग प्रजाकीय बना फिर भी अैसी स्थितिमें नही था कि विदेशी सरकारके बनाये हुअे रास्तेको छोड़ सके। जनताके प्रतिनिधियो, विभागके अधिकारियो तथा निष्णातोमें किसीको भी दूसरे प्रकारका तंत्र रचनेकी सूझ नही थी; आज भी नही है। राष्ट्रीय शिक्षाके प्रवर्तको और अुनकी संस्थाओकी प्रतिष्ठा अभी भी अच्छी तरह जमी हुअी नही मानी जायगी। अिसलिअे प्रतिनिधिगण मौजूदा पद्धतिको आगे बढानेमें तो सफल हो सकते है, लेकिन अुसे छोड़कर तेजीसे आगे बढनेमें परेशानी अनुभव करते है।

अिसलिअे अब राष्ट्रीय शिक्षाका दूसरा अर्थ महत्त्वपूर्ण बन जाता है। वह यह कि जो शिक्षा राष्ट्रके हित, संस्कृति, स्वभाव आदिकी पोषक हो वह राष्ट्रीय शिक्षा है, विदेशी सरकार द्वारा निश्चित किये हुअे मार्गसे दी जानेवाली शिक्षा राष्ट्रीय नही है। अिस प्रकार अब जो विवाद है वह प्रचलित शिक्षा और अुसके खिलाफ नअी पद्धति दाखिल करनेकी अिच्छा रखनेवाली शिक्षाके बीच है।

देश स्वतंत्र नही था, तब राष्ट्रीय शिक्षाका अर्थ सरकार-द्रोही या गुलामी-विरोधी शिक्षा था; यही अुनका महत्त्वका अंग था। अुनकी सिद्धिके लिअे अुसे सरकारी शिक्षा-विभागसे स्वतंत्र रखनेका तथा सरकारी शिक्षा-विभागसे असहयोग करनेका सिद्धान्त अपनाना आवश्यक था। अैसा कहा जा सकता है कि अिस सिद्धान्तके लिअे अिस अर्थमें अब कोअी आधार नही रहा।

अब प्रश्न अिस प्रकारका है। आजका सर्वमान्य सिद्धान्त यह है कि प्रजाको शिक्षित बनानेकी जिम्मेदारी सरकारकी है। अुसके

लिअे शिक्षाको अनिवार्य बनाना आवश्यक तथा सरकारके अधिकारकी बात मानी गअी है। स्वाभाविक यही होगा कि सरकार अपने विचारोंके अनुसार ही शिक्षा-पद्धतिकी रचना करे। सरकार बाह्य रूपमें जनताके प्रतिनिधियोंकी बनी हुअी है। ये प्रतिनिधि वही शिक्षा देंगे, जिसे वे अच्छी और व्यवहार्य समझेंगे। प्रत्येक नागरिकको शिक्षा मिले, यह देखना सरकारका कर्तव्य है। अिसलिअे शिक्षाके अनिवार्य अंग कौनसे और अैच्छिक अंग कौनसे हैं, यह भी सरकारको ही ठहराना चाहिये। और जो अग अनिवार्य माने जाय, अुन सभीको शिक्षा-संस्थाओंके लिअे — फिर वे सरकारी हों या गैरसरकारी — अनिवार्य कर दे, तभी मान सकती है कि वह अपनी दृष्टिसे अपनी जिम्मेदारी अदा कर रही है। अुदाहरणके लिअे, सरकार यदि यह माने कि सभी शिक्षितोंको नागरी, अुर्दू और प्रान्तीय तीनों लिपियां आनी चाहियें, तो वह सभी संस्थाओंके लिअे तीनों लिपिया अनिवार्य करेगी। यदि अुसे लगे कि दो लिपिया काफी हैं, तो वह अैसा करेगी। अुस हालतमें तीसरीका ज्ञान अैच्छिक ही रहेगा। अिसी प्रकार अंग्रेजी, धर्म, कताअी आदिकी शिक्षाके बारेमें भी होगा। अनिवार्य विषयोंको छोड़कर दूसरे चाहे जितने विषयोंकी शिक्षा मिली हो, तो भी पढ़नेवाला सरकारकी दृष्टिसे शिक्षित नहीं माना जायगा। जैसे, सिर्फ वेदपाठी ब्राह्मण या कुरानपाठी हाफिज।

अिसके साथ दूसरी बात यह है कि लोकशाहीमें जनताकी सरकारका अर्थ सर्वमान्य सरकार नहीं होता। वह वफादारी मांगने जितनी तो सर्वमान्य होती है, किन्तु नीति और अमलकी दृष्टिसे वह बहुमतमान्य ही रहती है। अध्यक्षका विशेष मत लेकर ५१ विरुद्ध ५० मत पानेवाली सरकार भी जनताकी ही मानी जायगी। अुसके विचारों और शासन-प्रणालीसे विरोध रखनेवाली अेकाध पार्टी तो रहेगी ही, यों मानकर चलना चाहिये। अेकसे ज्यादा विरोधी पार्टियां भी हो सकती हैं, लेकिन बिलकुल न हो अैसा शायद ही कभी होगा।

यह विरोधी पार्टी या पार्टियां आज भले अल्पमतमें हों, लेकिन यदि संप्रदाय वगैराके आधार पर ही बनी हुआी न हों तो अुन्हें भविष्यमें बहुमत पानेकी आशा हो सकती है। सरकारी पक्ष जो शिक्षा देता होगा, अुसमें यदि अिन पार्टियोंका कोअी विरोध हो तो वे सरकार पर यह आक्षेप करेंगी कि अुसकी शिक्षा राष्ट्रहित-वर्धक यानी राष्ट्रीय शिक्षा नहीं है। साम्प्रदायिक पार्टियोंकी भी शिक्षाके बारेमें कुछ विशेष दृष्टि होना संभव है। यदि अुस विशेष दृष्टिको सरकारी शिक्षामें स्थान न मिले, या अपनी संस्थाके विद्यार्थियोंके लिअे भी अुसे अनिवार्य करनेकी छूट न हो, तो अुन्हें भी सरकारी शिक्षासे स्वतंत्र रहना जरूरी मालूम हो सकता है। जैसे, कोअी अीसाअी स्कूल सब विद्यार्थियोंके लिअे बाअिबलके वर्गमें बैठना अनिवार्य करना चाहे, परन्तु सरकारी नियमोंमें अुसकी मनाही हो।

अिस प्रकार शिक्षाके बारेमें सरकारके विरोधी पक्षके तथा खास सम्प्रदायोंके अलग-अलग मार्ग रहें, यह स्वाभाविक है। अुनमें विरोधी पक्ष अपने मार्गको राष्ट्रीय शिक्षा कहेगा और सरकारी शिक्षाको अराष्ट्रीय; और संभव है वह सरकारी शिक्षासे स्वतंत्र रहनेका भी आग्रह रखे। यदि सरकारी नियम अुसमें विघ्नरूप बनें, तो अुनका यह मत रहेगा कि शिक्षा-संस्थाओं पर राज्यका अंकुश नहीं होना चाहिये। परन्तु अिस मतका अर्थ अितना ही समझना चाहिये कि जब तक अुस पक्षका बहुमत नहीं होता तभी तक अुसका अैसा मत है। यदि कल अुस पक्षकी सरकार बन जाये तो वह भी अपने मतके अनुसार अंकुश रखेगा ही। अुदाहरणके लिअे, यदि आजकी सरकारका यह मत हो कि राष्ट्रभाषाका अर्थ देवनागरी तथा अुर्दू दोनों लिपियोंमें लिखी जानेवाली हिन्दी-अुर्दू-मिश्रित हिन्दुस्तानी है और वह अुसे अनिवार्य कर दे, तो वह हिन्दी-प्रचारकोंकी दृष्टिमें राष्ट्रीय शिक्षा नहीं बल्कि भाषा और लिपिका संकर करनेवाली, अशुद्ध तथा बेढंगी शिक्षा देनेवाली अराष्ट्रीय प्रथा मानी जायगी; और चूंकि वह अनिवार्य

होगी, अिसलिये हिन्दी-प्रचारक शिक्षाको राज्यके अंकुशसे स्वतंत्र रखनेकी हिमायत करेंगे। परन्तु यदि कल शासनसूत्र अुनके हाथमें चला जाये, तो वे अुर्दू भाषा और लिपिको सरकारी शालाओंसे निकाल देंगे, और हिन्दुस्तानी पुस्तकोंको अमान्य करके शुद्ध हिन्दी पुस्तकें चलायेंगे। अुस समय आजका सरकारी पक्ष अुसे अराष्ट्रीय कहेगा, और अपनेको अनुकूल मालूम होनेवाली पुस्तकें चलानेकी स्वतत्रता चाहेगा।

अिस प्रकार सरकारी शिक्षा और राष्ट्रीय शिक्षा छोटे दल और बड़े दलके शिक्षण-मार्गोंके ही दूसरे नाम बन जाते हैं। छोटे दलकी रायमें सरकारी शिक्षा अराष्ट्रीय होगी, भले ही अुसे जनताके प्रचंड बहुमतका समर्थन प्राप्त हो।

हरअेक देशमें अैसा कुछ तो होता ही रहेगा। जिसके खास संप्रदाय हैं या जो सरकारका प्रतिस्पर्धी पक्ष है, वह छोटे पैमाने पर भी अपनी अलग सस्थायें चलानेका आग्रह रखेगा ही। यदि अुसकी प्रणालीमें अैसी कोअी बात होगी जिससे सरकारकी हस्तीको खतरा पहुंचनेकी संभावना हो, तो अुसे सरकारी दमनका सामना करनेका भी मौका आ सकता है।

सरकार पर प्रजाकी शिक्षाकी जवाबदारी है, अैसा निश्चित कर देनेके बाद यह नहीं हो सकता कि सरकारका शिक्षा पर किसी तरहका अंकुश न रहे। शिक्षा-विभाग ज्यादासे ज्यादा अितनी ही स्वतत्रता भोग सकता है कि सरकार समय-समय पर जो नियम बनाये, अुनके अनुसार शिक्षाका तत्र चलानेमें दूसरे अधिकारियों या विभागोंका हस्तक्षेप अुनके काममें बाधक न हो। जैसे न्याय-विभागके बारेमें होता है।

लोकशाही तंत्रमें सरकारी पक्षसे भिन्न विचार रखनेवाले पक्षोंको जैसे दूसरी बातोंमें अपना बहुमत बनाकर सरकारकी बागडोर अपने हाथमें लेनी पड़ती है, वैसे ही शिक्षाके क्षेत्रमें भी करना होता है। सरकार मानी तो जाती हो लोकतांत्रिक, लेकिन हकीकतमें तानाशाही ढंगकी हो, तो तीव्र परिस्थितिमें असहयोग, बहिष्कार या

सत्याग्रहके दूसरे अुपाय काममें लेनेका भी प्रसंग आ सकता है। यह सिर्फ शिक्षाके ही क्षेत्रमें संभव नहीं है; सभी प्रकारके राज्यतंत्रोंमें यह नौबत आ सकती है।

'शिक्षण अने साहित्य', अक्तूबर १९४७

५

'विशारद'* का अध्ययन

अनुभवसे नये स्नातकोंको कुछ देने जैसा हो, तो मैं अुन्हें अेक भूलसे मुक्त होनेकी बात कहूंगा। मेरे अेक मित्र कहा करते थे: After graduation comes humiliation (स्नातक होनेके बाद अपमान और तिरस्कारका अनुभव होता है)। वस्तुतः कअी बार यह सच होता है। किन्तु बारीकीसे विचार करने पर मालूम होगा कि स्नातकके मनमें अपने विषयमें जो अेक भ्रमपूर्ण कल्पना रहती है, वही अिसका कारण होती है। बहुतेरे स्नातकोंकी यह कल्पना होती है कि जैसे कारखानेसे बनकर निकले हुअे मालका अमुक बाजार भाव होना ही चाहिये, अुसी तरह स्नातक बनकर निकलते ही अुन्हें समाजमें अमुक कीमत तथा अमुक प्रतिष्ठा मिलनी ही चाहिये। कड़ुवे अनुभवोंके बाद अुन्हें मालूम हो जाता है कि वे खुद कारखानेके मालकी तरह जड नहीं हैं, अिसलिअे अुनकी अमुक कीमत निश्चित नहीं की जा सकती; और परावलम्बी जीवन बितानेके लिअे अुम्मीदवारी करनेवालेको प्रतिष्ठाका खयाल भी छोड देना पड़ता है।

अिसका पता लगानेमें स्नातकको जो निराशाका अनुभव होता है, अुसका कारण अुसकी अपनी ही भूल होती है। वह अिसकी छानबीन करेगा, तो पायेगा कि विशारद (या बी० अे०) तकका पाठ्यक्रम

---

* गूजरात विद्यापीठ, अहमदाबादकी अेक अुपाधि।

सामान्यतः अिस अुद्देश्यसे रचा ही नहीं जाता कि वह आजीविकाका साधन बन सके। वह तो विद्या-व्यासंगियोंका ही पाठ्यक्रम रहता है। यह पाठ्यक्रम अुनके लिअे है जिन्हें भाषा, अितिहास, संपत्ति-शास्त्र, आदि अनेक पांडित्यके विषयोंमें रस है और जो अिनका अधिक रसास्वादन करना चाहते हैं। वे यदि 'विशारद' तक अपनी पढ़ाअी चालू रखें तो केवल विद्याप्राप्तिकी रुचिके कारण ही रख सकते हैं। अिसलिअे विशारद हो जानेके बाद अुससे आजीविका कमानेकी अिच्छा करना अेक प्रकारके बीजसे दूसरे प्रकारका फल प्राप्त करनेकी अिच्छा रखने जैसा माना जायगा। आम तौर पर तो विशारदको भी आजीविकाके लिअे विशेष योग्यता प्राप्त करनी चाहिये, और वह योग्यता जिस धंधेके द्वारा आजीविका प्राप्त करनी हो, अुसमें अुम्मीदवारी करके ही प्राप्त की जा सकती है। अिस प्रकार यदि स्नातक हो जानेके बाद वह अपने-आपको आजीविका देने-वाली विद्याका विद्यार्थी समझे, तो कअी स्वारोपित श्रेष्ठताओंके विचारों और महान आशाओंको छोड़ देगा, और विद्यार्थीके जैसी ही नम्रता और शिष्यभाव अपने भीतर कायम रखेगा। अैसे स्नातकके लिअे अूपर लिखा हुआ अंग्रेजी वाक्य दुःखसे कहनेका प्रसंग नहीं आ सकता। स्नातक मानता है कि अब वह शिष्य नहीं रहा, अब वह धन और मानके योग्य हो गया है। किन्तु वह शिष्य नहीं रहा हो तो सिर्फ कुछ विशेष विद्याओंके सम्बन्धमें ही, धनप्राप्ति या आजीविका-प्राप्तिकी विद्याके बारेमें तो वह शिष्य ही है। वहां तो अुसे पुनः नम्रभाव, शिष्यभावसे अुम्मीदवारी ही करनी चाहिये।

यह सच है कि गुरुके जमानेमें और आज भी कुछ लोगोंके लिअे स्नातक होते ही आजीविकाके मार्ग खुल जाते हैं। किन्तु वे अपवाद-रूप हैं। अुन अपवादोंके कारण भी अलग हैं। अुनके लिअे विशारदका पाठ्यक्रम आजीविकाकी दृष्टिसे गढ़ा गया हो सो बात नहीं। परंतु कुछ धंधोंमें केवल अंग्रेजी भाषा पर अच्छा अधिकार होना ही

विशेष योग्यताके रूपमे माना जाता है; अिसलिअे अुनमें अंग्रेजीके अधिकारका आर्थिक मूल्य मिलता है। लेकिन यह वात हर वर्वेको लागू नही हो सकती। अिसके अलावा वडे-वडे लोगोकी जान-पहचान, प्रभाव वगैरासे होनेवाले फायदे भी सामान्य नियममें नही माने जा सकते। सामान्य नियम तो यही होना चाहिये कि हर स्नातक यह माने कि अभी तक अुसके भीतर जितनी अुमंग और अुत्साह था अुतनी विद्याकी अुपासना अुसने की, अव कुछ आजीविकाके लिअे सीखें।

नवजीवन, केळवणी अंक, २५–१–१९२५

६

मनुष्यताकी, प्रतिष्ठाकी और निर्वाहकी शिक्षा

विद्यापीठ कार्यालयकी ओरसे स्नातकोको अुनकी प्रवृत्तिके वारेमें कुछ प्रश्न पूछे गये थे। कुछ स्नातकोंके अुत्तर आ चुके हैं, दूसरोंके आ रहे है। वहुत ही थोडे स्नातकोको अपना भविष्य आशाजनक और वर्तमान स्थिति सतोपकारक मालूम होती है। अधिकतर अुत्तर निराशा-भरे और चिन्तासे पूर्ण हैं तथा चिन्ता पैदा करनेवाले है। अेक-दो स्नातक तो करुणाजनक स्थितिमें दिन विता रहे है। यहा सभी अुत्तरोका सार देनेका विचार नही है, केवल अुन अुत्तरो परसे पैदा होनेवाले कुछ विचारोको ही पेश करना चाहता हू।

अुसके पहले स्नातकोंके आश्वासन (?) के लिअे अेक-दो वातें स्पष्ट कर दूं।

स्नातक होनेके वाद निर्वाहके लिअे अनुकूल धधा पानेकी कठिनाअी घटी हुअी नही मालूम होती। यदि गूजरात विद्यापीठके स्नातकोका यह खयाल हो कि यह वात अुन्ही पर लागू होती है तो यह अुनका भ्रम है। पहले अेक वार मैं कह चुका हूं और आज फिर कहता हू कि यह

प्रश्न सभी स्नातकोंको समान रूपमें परेशान करता है। मेरा निरीक्षण तो यह है कि हममें से बहुतेरे स्नातकोंका बी० अे०, अेम० अे०, अेल-अेल० बी० तकका अभ्यास कुछ अिस प्रकारकी परिस्थितिमें बढ़ता है: अंग्रेजीकी पांचवीं या छठी कक्षा तक, यानी लगभग १५ या १६ वर्षकी अुम्र तक कौटुम्बिक स्थितिकी बहुत चिन्ता किये बिना अभ्यास चलता रहता है। अिसके बाद घरकी स्थितिका कुछ ज्यादा खयाल होने लगता है, अपनी जिम्मेदारीका कुछ-कुछ भान होता है; हम समझने लगते हैं कि पढ़ाअीका खर्च देना माता-पिताको कठिन होता है। परंतु अितनी कच्ची अुम्रमें क्या किया जाय, यह प्रश्न माता-पिताके और हमारे भी मनमें अुठता है। परन्तु कोअी अुत्तर नहीं मिलता। हमारी पढाअीकी अुमंग तो कायम ही रहती है, मित्रवर्गकी ओरसे अनुकूल प्रोत्साहन भी मिलता है। अिसलिअे यह होता है कि जब यहां तक गाड़ी खींच लाये तो अब मैट्रिक हो जायें। लेकिन मैट्रिकके बाद क्या किया जाय? फिर कुटुम्ब और मित्रोंकी सभा बैठती है, विचार-विमर्ष आरंभ होता है। परंतु कोअी निश्चित हल नहीं दिखाअी देता। कुटुम्बके प्रति अपनी जिम्मेदारीका हमें भान होते हुअे भी आगे पढनेकी हमारी अुमंग मन्द नहीं पड़ती। ज्यादा पढ़कर कुटुम्बकी यह स्थिति सुधारनेकी आशा भी सबको रहती ही है। कौटुम्बिक स्थिति बिलकुल खराब न हो और परीक्षा पास करनेमें हम निरे बुद्धू न हों तो दूसरे किसी हलके अभावमें हम कॉलिजमें भरती होनेके निर्णय पर पहुंच जाते हैं। आजकी चिन्ताको चार वर्षकी अवधि देकर आगे ठेल देते हैं। अैसा करते-करते बी० अे० हुअे कि फिर वही प्रश्न सामने आकर खड़ा होता है। और फिर कोअी सतोपकारक अुत्तर नहीं मिलता। अिसलिअे फिर अेल-अेल० बी० पास करनेके निर्णयकी ओर खिंच जाते हैं। अिस प्रकार हममें से ज्यादातर विद्यार्थियोंका अभ्यास अुत्तरोत्तर आत्म-निर्णयसे नहीं बढता, बल्कि जीवन-निर्वाहकी पद्धतिके बारेमें किसी संतोपकारक निर्णय पर न पहुंच सकनेके कारण मजबूरीसे आगे

बढता है। अिस स्थितिके कारण बी० अे०, अेल-अेल० बी० या स्नातक हो जानेके बाद चारसे छह वर्ष तक आगे ठेली जाती रही चिन्ता हृष्ट-पुष्ट होकर यदि कष्ट देनेके लिअे आ खडी हो तो अुसमें आश्चर्य नही होना चाहिये। यह कठिनाअी सिर्फ विद्यापीठके स्नातकोंके लिअे ही है या नअी है, यह खयाल भ्रमपूर्ण है। 'अेम० अे० बनाके मेरी मिट्टी क्यो खराब की?' जैसी ग्रेज्युअेटोकी दयाजनक स्थितिका दर्शन करानेवाली कथाये आजकलकी नही है। ग्रेज्युअेटोकी चिन्ताके प्रश्नको हल करनेके विचारमें से भी कुछ हद तक देशमें समय-समय पर राष्ट्रीय शिक्षाकी चर्चा और आन्दोलनकी अुत्पत्ति हुअी है।

विद्यापीठके कुछ स्नातकोने अेक बात यह कही है कि विद्यापीठके स्नातक होनेके कारण ही कअी जगह अुनका अनादर हुआ है। अुनसे कहा गया है कि 'हमें तो सरकारी डिग्रीवाले लोग चाहिये!' मै जानता हू कि मनुष्यकी आवश्यकता होते हुअे भी हमारे देशमें अैसे लोग हैं जिन्हें सरकारी डिग्रीवाले मनुष्यके प्रति विशेष श्रद्धा होती है। जिन्हें विशेष रूपमें अपने आदमी कहा जा सके, अैसे लोगोंके प्रति अश्रद्धा — आत्मविश्वासकी कमी — हमें गुलाम बनाये रखनेवाले अनेक कारणोंमें से अेक महत्त्वका कारण है। यह रोग हिन्दू जनतामें विशेष मात्रामें है। राष्ट्रीय संस्थाकी डिग्रीकी अपेक्षा सरकारी सस्थाकी डिग्रीको विशेप मान देनेकी, देशकी डिग्रीकी अपेक्षा विदेशकी डिग्रीको विशेप मान देनेकी हमारी आदत जरूर है। परतु फिर भी अुससे यह न समझा जाय कि अूपरका अुत्तर अिस आदतका ही परिणाम है। बहुतेरे मनुष्योका यह स्वभाव होता है कि अुन्हें किसी कारणसे अुम्मीदवारको न रखनेकी या दूसरा कोअी काम न करानेकी अिच्छा हो, तो वे सही कारण न बताकर दूसरा ही कोअी कारण बतलाते है। मनुष्यकी तीव्र आवश्यकता न हो, या कोअी अुम्मीदवार व्यक्तिगत रूपमें पसन्द न आता हो, या अुसे कुछ सस्ते वेतन पर रखनेकी वृत्ति हो, तो 'हमें दूसरी तरहका मनुष्य चाहिये' यह अुत्तर धधेदारोंकी

जातिमें सौम्य माना जाता है। अिस प्रकारका थोड़ा असत्य विनयी अुत्तर माना जाता है।

किन्तु यह कठिनाअी पुरानी है, या सर्वसामान्य है, या अिस अुत्तरमें सौम्य असत्य है, यों कहनेसे स्नातकोंके लिअे कोअी रास्ता खुल नहीं जाता। यह समझकर ही मैंने अूपर 'आश्वासन' शब्दके बाद प्रश्नचिह्न रखा है।

जब लम्बे समयसे शरीरमें रोग घर किये बैठा हो, तब रूढ़ मार्गसे जीवन व्यतीत करनेकी पद्धति जारी रखकर दवादारूसे रोग दूर करनेकी युक्तियां आजमाते रहनेमें मेरा विश्वास नहीं है। रोगीको अपनी जीवन बितानेकी पद्धतिकी ही जांच करनी चाहिये। अुसकी जीवन बितानेकी पद्धतिके मूलमें ही कहीं त्रुटि होनी चाहिये, और अुस त्रुटिको दूर किये बगैर रोगसे मुक्त नहीं हुआ जा सकता। संभव है अुस पद्धतिसे दूसरोंको वह रोग न होता हो, लेकिन अितना अुसे अपनी तासीरका बुनियादी फर्क समझना चाहिये। यह भी संभव है कि लंबे समयकी आदतके कारण वह त्रुटि निकालना कठिन हो; कौनसी त्रुटि है यह खोजनेके बदले दूसरी अच्छी पद्धति कौनसी है यह खोजना भी तत्काल संभव न हो; फिर भी यदि कभी समाधान होना होगा तो वह मौजूदा जीवन-पद्धतिको बदलकर अुसकी जगह ज्यादा अच्छी पद्धति दाखिल करनेसे ही हो सकेगा।

अिस न्यायसे मैं मानता हूं कि शिक्षासे हमारी क्या अपेक्षा है और हमारी शिक्षा हमें क्या दे सकती है, अिसकी तात्त्विक दृष्टिसे खोज किये बगैर स्नातकोंकी कठिनाअियोंका हल नहीं मिल सकता। हमारा आजका प्रयत्न अिसी दिशामें चल रहा है।

शिक्षासे मिलनेवाले फलोंके आधार पर मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि शिक्षा तीन प्रकारकी होती है। कुछ शिक्षा तो केवल हमारी मनुष्यताको बढानेके लिअे होती है। वह हमारी भावनाओंका — गुणोंका विकास करती है। हमें मनुष्यके रूपमें विशेष अुन्नत बनाती है।

मनुष्य जो सत्पुरुषका समागम करता है वह कोअी निर्वाहकी पद्धति ढूंढ़नेके लिअे नहीं, बल्कि अुसके भक्ति, साधुता, त्याग, सतर्कता आदि गुणोंके लिअे।

दूसरे प्रकारकी शिक्षा हमें प्रतिष्ठा देनेवाली होती है। पण्डित तथा बहुश्रुतके रूपमें या किसी विद्याके प्रखर विद्वान्‌के रूपमें वह समाजमें हमारी प्रतिष्ठा बढ़ानेवाली होती है। महाविद्यालयमें हम जो शिक्षा लेते हैं, वह आम तौर पर अिसी प्रकारकी मानी जायगी।

तीसरे प्रकारकी शिक्षा हमारा अुदर-निर्वाह करनेके लिअे है, जैसे वकीली, डॉक्टरी, बढ़अीगीरी, चमारी, किसानी, जुलाहागीरी आदि।

शिक्षासे जिस प्रकारके फल पानेकी अिच्छा हो, अुसीके अनुसार विद्यार्थीको शिक्षक ढूंढना चाहिये। सत्पुरुषके समागमसे हमारा चरित्र अुच्च होगा, अुसके कारण समाजमें हमारी अच्छी साख जमेगी और सम्भव है अुससे हमारा धन्धा ज्यादा अच्छा चलने लगेगा। किन्तु वह तो अैसी शिक्षाका गौण फल माना जायगा। वह चरित्रकी शिक्षाका निश्चित फल नहीं कहा जा सकता। अुलटे, यदि मुक्तानन्द स्वामीके शब्दोंमें कहे तो यह भी हो सकता है कि :

" मधुकर, वात मोहनवर केरी,
जादुगारी जोर रे;
नरनारी अेने गाये सुणे ते
त्यागे संसारनो तोर रे

*　　*　　*

तथा

धन, दोलत, घरबार न अेने
भमता फरे रानोरान रे।

*　　*　　*

जे कोअी जगमां अेने अनुसरशे
तेना ते भवाडा गाय रे;

मुक्तानन्दना नाथने सेवी
जग छतरायां थाय रे"+ (अुद्धवगीता)

अिसी तरह हो सकता है कि प्रतिष्ठाकी शिक्षाके परिणाम-स्वरूप अच्छी तरह निर्वाह हो सके अैसा अध्यापन, लेखन अित्यादिका काम मिल जाय। किन्तु वह भी अुसका गौण फल माना जायगा। अुसका मुख्य फल तो अुसके द्वारा शिक्षित-विद्वान्की प्रतिष्ठा मिले अितना ही है।

जिसे जीवन-निर्वाहकी शिक्षा प्राप्त करनी हो, अुसे अुस विद्याके शिक्षकके पास जाना चाहिये। जिसे व्यापारी होना हो, अुसे व्यापारीके पास अुम्मीदवारी करनी चाहिये। वाणिज्यके स्नातक वननेसे व्यापारी नही वना जा सकता, वाणिज्य विपयके अध्यापक वन सकते है; और वहुत हुआ तो व्यापारीके सहायक वन सकते है। अिसी प्रकार जिसे मिलका अिंजीनियर वनना हो अुसे वही अुम्मीदवारी करनी चाहिये। वढ़अी वनना हो तो वढअीके यहा अुम्मीदवारी करनी चाहिये। ये धन्वे यदि महाविद्यालयोमें सिखाये जायं तो अुसका प्रयोजन मैं

+ हे मवुकर, मोहनकी वात तो जवरदस्त जादूसे भरी है। जो स्त्री-पुरुप अुसे गाते-सुनते है वे ससारका अहंकार छोड़ देते है।

* * *

तथा —

अुनके पास धन, दौलत, घरवार वगैरा कुछ नही होता। वे तो जगल-जंगल भटकते फिरते है।

* * *

ससारमें जो कोअी अुनका अनुसरण करेगा, अुसकी अिसी तरह फजीहत होगी। मुक्तानन्द कहते है कि अुनके नायकी सेवा करनेवालेको संसारका सारा रहस्य मालूम हो जाता है।

अितना ही मान सकता हू कि अुन धन्धोको चलानेवाले लोग अुन्हे व्यावहारिक रूपमें जानते है, किन्तु अुनके शास्त्रीय ज्ञानके अभावमें वे अुनसे पूरा फायदा नही अुठा सकते। यदि अुन धन्धोका शास्त्र विद्यार्थियोको समझा दिया जाय, तो वे अुससे विशेप लाभ अुठा सकते है। लेकिन अुससे यह न समझा जाय कि महाविद्यालयमें पढ लेनेके बाद धन्धेदारोंके यहां अुम्मीदवारी करनेकी आवश्यकता कम हो जाती है।

यह बात न समझनेके कारण सरकारी अेव राष्ट्रीय विद्यापीठके विद्यार्थी जो शिक्षा प्राप्त करते है, अुससे दूसरे ही प्रकारके फलकी अिच्छा रखते है; और वह फल जब निश्चित समयमें नही मिलता, तो निराश होकर शिक्षाको दोप देने लगते है।

गूजरात विद्यापीठका मुख्य ध्येय तो विद्यार्थियोकी मनुष्यताका पोषण करना है; स्वराज्यके विना भारतवासियोंकी स्थिति शर्मनाक है, अिस बातका अुन्हे भान कराना है; और यह भान करानेके बाद अुस धर्मको सिद्ध करनेके लिअे तथा स्वराज्यके यज्ञमें अपने-आपको होम देनेके लिअे अुन्हें तैयार करना है। कहा जा सकता है कि विद्यापीठने यह आशा ही नही रखी थी कि अुसमें आनेवाले विद्यार्थी यह भी न जानते होगे कि अपना जीवन-निर्वाह किस प्रकार किया जाय। यह मान लिया गया है कि निर्वाह प्राप्त करनेके लिअे जितने साहस, अुत्साह और पुरुषार्थकी आवश्यकता है, अुससे तो कही ज्यादा मात्रामें ये गुण लेकर वे लोग यहां आयेंगे।

लेकिन प्रतिष्ठाकी शिक्षाको भी आज विद्यापीठमें स्थान दिया गया है। सरकारी कॉलेजोंका तो कहा जा सकता है कि यही मुख्य क्षेत्र है। विद्यापीठमें अुसे गौण स्थान दिया गया है, यद्यपि यह भी लग सकता है कि मुख्य स्थान अुसीने छीन लिया है। अठारह-बीस वर्षकी अुम्रमें अुच्च वर्णके युवकोमें विद्याप्राप्तिकी अुमंग अत्यंत तीव्र होती है। यह सच है कि बहुधा अिस अुमंगका अनुचित प्रमाणमें और विशेष महत्त्वकी जवाबदारियोकी अवगणना करके पोषण किया जाता है।

फिर भी चूंकि यह नहीं कहा जा सकता कि वह सर्वथा दोषपूर्ण ही है, अिसलिअे अुसके पोषणको 'आगे बढ़े हुअे' समाजमें थोड़ा स्थान देना अनिवार्य होता है। परन्तु यह मान लेनेमें कोअी हर्ज नहीं कि विद्यार्थीको अपने जीवन-निर्वाहकी चिन्ता नहीं रहती। वह केवल विद्यार्थीकी अुमंगसे ही कॉलिज या महाविद्यालयमें भरती होता है। कुछ हद तक यह कहा जा सकता है कि महाविद्यालयमें या तो विद्याप्रेमी या खुशहाल युवकोंके लिअे स्थान है या फिर अैसे युवकोंके लिअे जो भिखारीकी स्थिति भोगते हुअे भी अपना विद्या-प्रेम नहीं छोड़ सकते।

परन्तु जिन्हें १५-१७ वर्षकी अुम्रमें ही जीवन-निर्वाहका प्रश्न हैरान करने लगता हो, वे भाषा-विशारद या अितिहास-विशारद बननेका प्रयत्न करें — और यदि भिखारीका जीवन बितानेकी अुनकी तैयारी न हो — तो वे भूल करते हैं। वे अपना निर्वाह किस ढंगसे करना चाहते हैं यह अुन्हें निश्चित करना चाहिये; और जो अुस ढंगसे अपना जीवन-निर्वाह चलाता हो अुसके यहां अुम्मीदवारी करनी चाहिये। यदि अुसमें अुन्हें विशेष कुशलता प्राप्त करनी हो तो जहां अुसका शास्त्रीय ज्ञान मिले वहां अुन्हें जाना चाहिये। शायद यह कहा जाय कि 'प्रतिष्ठित' शिक्षा पाये हुअे कुछ लोग शिक्षा लेनेके बाद केवल विद्याकी प्रतिष्ठा ही नहीं, बल्कि धनकी प्रतिष्ठा भी प्राप्त कर सकते हैं, और जीवन-निर्वाहके मार्गोंमें 'प्रतिष्ठित' शिक्षाके द्वारा ही प्रवेश किया जा सकता है। किन्तु विचार करने पर मालूम होगा कि अुसके पीछे 'प्रतिष्ठित' शिक्षाकी अपेक्षा दूसरे ही कारण हैं। 'प्रतिष्ठित' शिक्षा पानेवालेको अध्यापन कार्यके सिवा दूसरे किसी धन्धेमें शेक्सपियर या कालिदासके गहरे ज्ञानके कारण या अितिहास, अर्थशास्त्र अथवा तत्त्वज्ञानमें पहले नम्बरसे पास होनेके कारण अच्छी नौकरी मिली हो अैसा कहीं नहीं सुना। अुसे जो अूंचा नम्बर मिला है वह अितना ही अनुमान करनेके लिअे अुपयोगी हो सकता है कि अुसकी बुद्धि तीव्र है तथा अुसकी अंग्रेजी अच्छी होगी। कोअी यह नहीं

मानता कि अुसके धन्धेके लिअे अुसे शेक्सपियरका ज्ञान होना चाहिये। अुसमें आखिर तो अुसकी तीव्र बुद्धि, मेहनत और कभी कभी जान-पहिचान या वसीला ही अुसकी सहायता करते हैं। मतलब यह है कि 'प्रतिष्ठित' शिक्षामें से सीधी तरह जीवन-निर्वाहका फल अुत्पन्न नहीं होता।

तब शायद यह प्रश्न अुठेगा कि क्या गरीब युवकोंको 'प्रतिष्ठित' विद्या पानेका अधिकार नहीं है? क्या समाजको अैसी व्यवस्था नहीं करनी चाहिये, जिससे अुन्हें भी विद्याके सब लाभ मिल सकें? बेशक, अैसा होना चाहिये; पर आज तो 'प्रतिष्ठित' कही जानेवाली विद्यायें फुरसत पा सकनेवाले लोग ही ग्रहण कर सकते हैं। अिस स्थितिमें विषमता भी है, किन्तु यह तो आजकी वस्तुस्थिति है। फिर भी यदि गरीब युवक पुरुषार्थी और वीर्यवान हो, तो वह भी विद्वान् हो सकता है। सिर्फ अुसे अपने समय-पत्रकमें थोडा परिवर्तन करना होगा। हममें से बहुतेरे युवकोंकी परीक्षायें पास कर लेनेके बाद ज्ञान-पिपासा ही मर जाती है। दो-चार वर्षमें ही अुनकी विद्या-प्राप्तिकी अुमंग पूरी (?) हो जाती है। विद्यार्थी-दशा और अविद्यार्थी-दशा — अिस तरह जीवनके दो भाग करना वस्तुतः भूल है। समनस्क और शुचि मनुष्यके जीवनमें अविद्यार्थी-दशाके लिअे स्थान ही न होना चाहिये। मनुष्य चाहे जितने व्यवसायों या चिन्ताओंमें पड़ा हो, फिर भी अुसे ज्ञान-पिपासाके लिअे सतत कुछ-न-कुछ अुद्यम करते रहना चाहिये। यदि गरीब विद्यार्थी यह बात समझ ले तो वह तीन-चार वर्षमें अपनी ज्ञान-पिपासा तृप्त कर डालनेकी अुतावलीमें नहीं पड़ेगा। तीन-चार वर्षमें मिलनेवाले ज्ञानको वह जीवन पर्यन्त धीरे-धीरे प्राप्त करता रहेगा। यह ज्ञान चूंकि परीक्षाके बोझसे दबकर नहीं बल्कि अपनी रुचिसे प्राप्त किया जायेगा, अिसलिअे वह विशेष लाभदायक होगा।

लेकिन यदि विद्यार्थी अैसा न करें तो अुन्हे अिसके लिअे विशेष समय देने और तब तक धीरज रखनेके सिवा कोअी चारा नहीं है।

वे मनुष्यताकी शिक्षा लें, अुमंग हो वहां तक प्रतिष्ठाकी शिक्षा लें, और अुसके बाद निर्वाहकी शिक्षाके लिअे फिरसे अुम्मीदवारी करनेको तैयार रहें। यदि कोअी कबीर जैसा शिक्षक मिल जाय, जो मनुष्यताकी शिक्षा भी दे सके, अपने समयकी 'प्रतिष्ठित' विद्याओंकी शिक्षा भी दे सके, और साथ ही बुनाअी जैसे निर्वाहके धन्धेकी शिक्षा भी दे सके, तो वह अमूल्य लाभ माना जायगा। लेकिन अैसा शिक्षक सभीको नहीं मिल सकता। अुन्हें तो क्रमसे सभी प्रकारके शिक्षकोंका शिष्यत्व स्वीकार करना होगा; नहीं तो निराशाके सिवा और कुछ भी पल्ले न पड़ेगा।

नवजीवन, केळवणी अंक, २९-११-१९२५

७

शिक्षणमें भावनाओंका विकास

पूज्य गांधीजी बार-बार कहते आये हैं कि आप अपने बालकोंको पहले मनुष्य बनायें, फिर अक्षरज्ञान दें। शिक्षणका अर्थ केवल अक्षर-ज्ञान नहीं होता। अक्षरज्ञानका अर्थ मनुष्यत्व नहीं होता।

हमारा लड़का रवीन्द्रनाथ टागोर जैसा कवि बने, जगदीशचन्द्र बोस जैसा रसायन-शास्त्री बने, भास्कराचार्य जैसा ज्योतिषी बने, चिकित्सा-शास्त्रमें अपना कोअी सानी न रखे, पाकशास्त्रमें प्रवीण हो, संगीतशास्त्रमें पंडित विष्णु दिगम्बरको हरा दे, वादविवादमें सभी शास्त्रियों और वकीलोंको जीत ले, वक्तृत्वमें सुरेन्द्रनाथ बेनरजीको पीछे रख दे, फिर भी संभव है कि अुसमें मनुष्यत्व न आया हो।

अिनके अलावा, संभव है वह जैमिनि जैसा कर्मकाण्डी हो, साम्प्रदायिक विधियोंका यथाशास्त्र पालन करनेवाला हो, और फिर भी मनुष्य न बना हो।

मनुष्यत्वका अर्थ क्या?

शरीरकी तालीम महत्त्वकी है; किन्तु बलवान तो हाथी भी होता है।

बुद्धिकी सूक्ष्मता महत्त्वकी है; परन्तु कर्तृत्व (पुरुषार्थ) के बिना बुद्धि वन्ध्या है।

मनुष्यत्व सौंदर्यमें भी नहीं है। मनुष्यके शरीरको कितना ही सजाया जाय, लेकिन अुसमें पक्षियोंका नैसर्गिक सौंदर्य नहीं आ सकता।

शरीरकी रक्षा करना प्राणीमात्रका स्वभाव है। लेकिन कुत्ते, घोड़े जैसे कुछ पशु अपने स्वामीके लिअे शरीर कुरबान कर देते हैं। कोअी-कोअी पक्षी अपने साथीके वियोगसे शरीर छोड़ देते हैं। युद्धमें पीठ दिखानेकी अपेक्षा हमारे राजपूतोंको मौत अच्छी लगती थी। दिवालिया बननेकी अपेक्षा वैश्यको मर जाना ज्यादा अच्छा लगता था।

मनुष्यका मनुष्यत्व अुच्च भावनाओंके साथ अेकरूप होनेमें है। जिनमें शौर्य, क्षमा, दया, अहिंसा, सत्य, प्रेम आदि भावनाओंका अत्यन्त विकास हुआ है, अुन्हें हम महात्मा, पूज्य, सन्त, अवतारी मानते हैं। अुन्होंने अपनी अुन्नति कर ली है। जिन्होंने अिन भावनाओंके साथ अत्यन्त पुरुषार्थ — कर्तृत्व दिखलाया है, अुन्होंने संसारको अूंचा अुठाया है।

अुपनिषद् कहते हैं कि आत्मतत्त्व जाननेके लिअे बुद्धिकी सूक्ष्मता चाहिये। परन्तु बुद्धिकी सूक्ष्मताका अर्थ पाण्डित्य नहीं है। मैं समझता हूं कि अुपनिषदोंमें बुद्धिकी जो सूक्ष्मता सूचित की गअी है वह भावनाओंके अतिशय विकाससे बुद्धिमें पैदा होनेवाली सूक्ष्मता है।

अुच्च आदर्श तो बहुतेरे लोग रखते हैं। परन्तु अुन आदर्शों तक विरले ही मनुष्य पहुंच सकते हैं। बुद्धि और मनके बीच बार-बार संघर्षका अनुभव होना सामान्य स्थिति है। अिन झगड़ोंका कारण भावनाओंके विकासकी कमी है। जो अेक भावनाके साथ तद्रूप होता

है, अुसके लिअे किसी भी तरहका त्याग करना कठिन नहीं होता। अुसे अिंद्रियोंका संयम सीखना नहीं पडता, अुसे प्रयत्न-साध्य तप नहीं करना पड़ता। जो अेक भावनाके साथ तद्रूप हो सकता है, अुसे अुससे भी ज्यादा अूंची भावनाके साथ तद्रूप होनेमें देर नहीं लगती।

हमारे देशमें भावनाओंका विकास रुक गया है, या अुसने विपरीत स्वरूप ले लिया है, जिसके कारण किंचित् त्याग करना भी हमारे लिअे आज कठिन हो जाता है।

भावनाओंकी शुद्धि और अुनका विकास बालककी शिक्षामें अुसके शरीरके पोषणके साथ जुड़ा हुआ होना चाहिये।

भावनाओंकी शिक्षाकी प्राथमिक शाला कुटुम्ब है। वह शिक्षा देनेवाला पहला गुरु माता है, दूसरा गुरु पिता है। अुसका पहला पाठ प्रेम है; और अुसका पहला फल गुरुजनोंकी सेवा करनेकी वृत्तिका विकास है।

आज्ञाका पालन और सेवा करनेकी वृत्ति अेक चीज नहीं है। आज्ञाका पालन डरसे भी हो सकता है। लाड और प्रेम अेक नहीं हैं। लाड़में मूर्खता भी हो सकती है। जिस बालकको मातृभक्त और पितृभक्त होनेका सबक मिला है, वह मनुष्यमात्रका भक्त हो सकेगा। कुटुम्बसेवामें जन-समाजकी सेवाका बीज निहित है।

सेवावृत्तिका विकास मनुष्यत्वका पहला लक्षण है और शायद अन्त तक रहनेवाला भी हो। अिस वृत्तिके विकासमें और अुसके क्षेत्रके विस्तारमें जगत्का कल्याण समा जाता है।

माता-पिताकी आज्ञाके पालनके लिअे जिस बालकने अपना शरीर अर्पण करना सीखा है, वह गुरुके पास जाने पर गुरुके लिअे भी वैसा ही करेगा, और बड़ा होने पर समाजके लिअे भी वह बलिदान दे सकेगा।

राममें पितृभक्ति न होती तो अुन्हें अवतारके रूपमें कोअी नहीं पूजता। वे पितृभक्त न होते, तो प्रजाभक्त भी नहीं हो सकते थे।

नन्द और यशोदा पढे-लिखे न थे। परन्तु वे कृष्णको शिक्षा दे सकते थे। अुन्होंने कृष्णको प्रेमका जो पाठ पढाया था, अुससे ही कृष्णकी मुरलीमें माधुर्य भर गया था।

वालक परमेश्वरकी पूजा करना सीखे अुसके भी पहले वह माता-पिताको देवता मानना सीखे, यह ज्यादा महत्त्वका है।

भावनाओंके विकासमें दूसरा स्थान कर्तृत्वकी — पुरुषार्थ करनेकी — शक्तिका है। हम अेक भी काम पूरा नही कर सकते, अिसका कारण यह है कि हम कर्तृत्वहीन वन गये हैं, हममें कोअी काम करनेका अुत्साह ही नही है। अपनी अशक्तिको हमने वहुधा साधुता माना है। पुराणोमें कहा गया है कि भारतवर्षके राजाओंको देवता अपनी सहायताके लिअे वुलाते थे। परन्तु आज तो हम यह चाहते है कि देवता आकर हमारा अुद्धार करे! हममें दया कितनी ही क्यो न हो, लेकिन पुरुपार्थ न हो तो वह दया किस कामकी? जो भी हमारा अिष्ट हो अुसे सिद्ध करनेके लिअे हमें कर्तृत्व तो करना ही चाहिये।

कर्तृत्व कार्य करनेकी शारीरिक या वौद्धिक शक्ति ही नहीं है; वह तो शौर्यसे मिलती-जुलती अेक वृत्ति है। वीर पुरुप साहसी होता है, अुद्यमशील होता है, विघ्नोंसे घवडाता नही और अपने ध्येयको जल्दी नही छोड़ता। कर्तृत्व अेक वृत्ति है, फिर भी यह सच है कि शरीरके आरोग्य पर अुसका आधार है। अिसीलिअे शारीरिक पुष्टिके वाद तुरन्त ही भावनाओंके विकासको स्थान दिया गया है।

जो वालक पुरुपार्थी होगा और श्रवणकी तरह माता-पिताकी सेवा करना सीखा होगा, अुसके लिअे वुद्धिका विकास दूर नही है, सद्गुण दूर नहीं है। मोक्ष भी दूर नही है। मेरी वुद्धिको तो यही लगता है कि निःस्वार्थ सेवा और कर्तृत्व ही मुक्तिकी विद्या है।

नवजीवन, केळवणी अंक, १८-९-१९२२

८

विनय बनाम दृढ़ता और स्वातंत्र्य-वृत्ति

अेक भावी स्नातक, जिनका मुझसे व्यक्तिगत रूपमें मीठा संबंध है और जो मेरे प्रति अितना आदर-भाव रखते हैं कि मेरा अपमान नहीं कर सकते, अुनके मनमें अैसी गलतफहमी पैदा हो गअी है कि विद्यापीठ कार्यालयकी ओरसे कुछ असावधानी या पक्षपात हुआ है, जिससे अुन्हें नुकसान पहुंचा है। अिसलिअे वे नीचेका प्रश्न पूछते हैं:

> "मेरे साथियोंको मुझसे पहले यह फार्म मिलनेका कोअी कारण हो सकता है? अुनके साथ ही अपना . . . नाम लिखवाकर मेरी . . . शरीक होनेकी अिच्छा नहीं है, यों मान लेनेका कोअी कारण है? हो तो कृपया लिखें।"

अिस प्रकारकी शैलीमें लिखे हुअे पत्र कभी-कभी मेरे पास आते रहते हैं। विद्यार्थियोंकी स्वातंत्र्य-वृत्तिका विकास होने लायक वातावरण मुझे अिष्ट मालूम होता है। मैं यह भी समझ सकता हूं कि अिस वृत्तिके विकासमें विद्यार्थी कभी अपना तारतम्य खो बैठता है। अिसलिअे जब कभी अैसे पत्र आते हैं, मैं हंसकर अुन्हें दाखिल दफ्तर कर देता हूं। अिस पत्रको मैं प्रकाशित कर रहा हूं, अुसका आशय यह नहीं कि मैं अुन भाअीको सार्वजनिक रूपमें अुलाहना देना चाहता हूं; अुनके साथ मेरा विशेष परिचय होनेसे गलतफहमी होनेकी कम संभावना है, यों मानकर ही अुनके पत्रको टीकाका निमित्त कारण बना रहा हूं। अिस टीकाको पढकर वे भाअी यह न समझें कि मैं अुनसे किसी प्रकारकी क्षमायाचनाकी अपेक्षा रखता हूं।

हमारे देशके बहुतेरे सत्ताधारियोंके मनमें यह खयाल दिखाअी देता है कि अपने मातहत लोगों या रिआयाके साथ व्यवहारमें विनय

रखी ही नही जा सकती; वह निर्बलता मानी जायगी; अुससे अधिकारी अपने दृढ निश्चय और प्रतिष्ठाकी रक्षा न कर सकेगा, वह अपना फर्ज न बजा सकेगा। जो अधिकारी खुशामदके बल पर अूचे चढते है, अुनमें यह खयाल घर किये रहता है। अुनकी समझमें यह नही आता कि अुन्हें बाकायदा जो अधिकार मिला है, अुसकी ताकत ही नियमके अनुसार आवश्यक काम करवानेके लिअे काफी है। अुसके लिअे अुद्धतताके बलकी सहायता आवश्यक नहीं।

अिसी तरह दूसरी दृष्टिसे विद्यार्थियोका भी यह खयाल हो गया है कि स्वातत्र्य (!) के जमानेमें विनयी नही बनना चाहिये। अुनकी यह धारणा मालूम होती है कि विनय गुलामीके सस्कारोंसे पैदा हुआ अेक दुर्गुण है। अिसलिअे वे विनयका नाश करके गुलामीका नाश करनेकी आशा रखते हैं। अुन्हें यह नही समझमें आता कि विनयमें भी शक्ति भरी हुअी है, और स्वातत्र्य-वृत्तिवाला मनुष्य केवल विनय-बलसे ही अन्यायी अधिकारीको हरा सकता है। गुलामीकी मनोदशाका नाश करनेके लिअे अविनयी होनेकी जरा भी आवश्यकता नही। आवश्यकता तो अिस बातकी है कि भयसे अुत्पन्न होनेवाले संकोचको और अुसके कारण विनय-पूर्वक किन्तु साफ-साफ सत्य बोलनेका साहस न होनेके दोषको मनसे दूर किया जाय।

मै चाहता हूं कि अैसी शैली स्वातत्र्य-वृत्तिके विकासको दिखानेवाला चिह्न है, यह माननेकी विद्यार्थी भूल न करे। अिससे स्वातंत्र्य-वृत्तिका विकास नही मालूम होता, बल्कि अपने कुल (विद्यापीठ) के प्रति हमारे मनकी गहराअीमें छिपा हुआ अनादर प्रकट होता है। जिन विद्यार्थियोंको अपने अध्यापकों या कुलके प्रति आदर नहीं है, वे यदि अुस संस्थामें अपना शिक्षण चालू रखते है या अुसकी पदवी ग्रहण करते हैं, तो वे अपने-आपको धोखा देते हैं। वे अुस संस्थासे किसी भी तरहका सच्चा लाभ नही अुठा सकते, न वे 'स्नातक-प्रतिज्ञा' का पालन कर सकते हैं। अितना ही नहीं, आगे

जाकर वे अपने जीवनके कड़ुअे अनुभवसे जानेंगे कि स्वातंत्र्य-वृत्तिकी हिम्मत अुनमें पैदा ही नहीं हुअी है। बल्कि स्वातंत्र्य-वृत्ति मानकर जिस अुद्धतताकी भावनाका अुन्होंने पोषण किया है, अुससे अुन्होंने अपने जीवन-साफल्य पर ही कुल्हाड़ी चलाअी है।

आशा है कि विद्यार्थी अिस सम्बन्धमें विचार करेंगे और अुद्धतताकी बढ़ती हुअी वृत्तिको अंकुशमें रखेंगे।

नवजीवन, केळवणी अंक, २९–११–१९२५

९

तारतम्य-बुद्धि

कुछ हद तक यह दुःखद अनुभव सभीको होता है कि किसी भी प्रकारके व्यक्तिगत स्वार्थसे रहित मनुष्य कोअी सर्वमान्य सत्कार्य शुरू करते हैं, तो अुनमें भी अुस कामके सम्बन्धमें तीव्र मतभेद पैदा हो जाते हैं। ये मतभेद बहुत बार सिद्धान्तकी भाषामें पेश किये जाते है। अिन सिद्धान्तोंको अस्वीकार करनेके लिअे तो विरोधी भी तैयार नही होता, लेकिन साथ ही अुन सिद्धान्तोंसे निकलनेवाले तात्पर्यको भी वह स्वीकार नही कर पाता। वह अितना तो समझता है कि कहीं भूल हो रही है, परन्तु अुस भूलको बता न पानेसे अुसका वह विरोध दुराग्रह माना जाता है। अिससे बहुत बार कार्यकर्ताओंके बीच व्यर्थका वैमनस्य पैदा हो जाता है, फिरसे मिलकर काम करनेका अुत्साह भंग हो जाता है और कभी-कभी प्रवृत्ति भी टूट जाती है। अिन्हीं कारणोंसे कुछ लोग सार्वजनिक कार्योंसे निवृत्त हुअे भी देखे जाते है।

अिस स्थितिसे प्रकट होता है कि हमारे जीवनमें, जीवन-सिद्धान्तोंमें, हमारी बुद्धिमें या शिक्षामें कुछ दोष है।

अिस दोषके अेक अंग पर आज मैं विचार करना चाहता हूं।

यह दोष तारतम्यका है।* विचारमें तारतम्यके सिद्धान्तका विस्मरण और आचारमें तारतम्यकी मर्यादा निश्चित करनेके बारेमें दुविधा, ये दोनो बातें अकसर प्रामाणिक मनुष्योंके मतभेदोका कारण बनती हैं।

अिसे स्पष्ट करता हूं।

तारतम्यका सिद्धान्त हम तब भूलते हैं जब आचरणका माप-दण्ड ठहरानेमें हमें किसी अेक ही सूत्रसे दिखाया जानेवाला विचार या सिद्धान्त परिपूर्ण मालूम होता है और अिस विचार या सिद्धान्तसे अनुमानोकी जो परम्परा निकलती है अुससे चिपटे रहनेमें ही योग्य आचरण दिखाअी देता है। हकीकत यह है कि योग्य आचरण किसी अेक विचार या सिद्धान्तको ही भलीभाति ग्रहण करनेसे नही पैदा होता। वह अनेक विचारो या सिद्धान्तोमें निहित तथ्याशोको स्वीकार करके प्राप्त वस्तुस्थितिमें अुन सब सिद्धान्तोका सुसगत समुच्चय करनेसे पैदा होता है। भाषामें ये सिद्धान्त कअी बार अेक-दूसरेके विरोधी दिखाअी देते है, फिर भी अिन परस्पर-विरोधी सिद्धान्तोमें भी तथ्याश रहता है, और अिस तथ्याशको निष्पक्ष रूपमें स्वीकार न करनेसे योग्य आचरण निश्चित करनेमें भूल होती है।

अुदाहरणके लिअे बाढ़-संकट-निवारणके सम्बन्धमें बार-बार 'स्वाश्रय' के जिस सिद्धान्तकी बात कही जाती है अुसीको हम लें।

मनुष्यको स्वाश्रयी होना चाहिये। विपत्तिमें भी स्वयं अपनी कठिनाअी दूर करनेकी अुसमें शक्ति और हिम्मत आनी चाहिये। अिसका नाम है स्वाश्रय। बेशक, यह गुण महान है।

---

* सादी भाषामें अिस दोषको केवल पोथी-पण्डितका दोप भी कहते है। लेकिन जो सिर्फ पोथी-पण्डित ही नही हैं, बल्कि पढे और गुने दोनो हैं, अुनमें भी कभी-कभी यह दोप पाया जाता है।

किन्तु अिससे यह तात्पर्य निकाला जाता है कि दूसरे व्यक्ति पर जब विपत्ति आये तो किसीको अुसकी मददके लिअे नहीं दौड़ना चाहिये, क्योंकि अैसा करके हम अुसे स्वाश्रयी नहीं बनने देते।

यह तात्पर्य अुलटा है। अिसमें तारतम्यका अभाव है।

सत्य यह है कि स्वाश्रयके सिद्धान्तकी व्याप्ति अमर्यादित नहीं है। केवल स्वाश्रय पर ही जीवन नहीं टिक सकता। और न स्वाश्रयसे अभ्युदय साधा जा सकता है। कभी-कभी तो स्वाश्रयी रहने या रखनेका आग्रह जीवनको अशक्य बना सकता है। छोटे बालक, रोगी और वृद्धको पराश्रयकी अपेक्षा रखनी ही पड़ती है और अुन्हें आश्रय देनेवाला दोषी नहीं माना जाता। अिसी प्रकार कुछ अैसे प्रसंग होते हैं जब अेक मनुष्य यदि दूसरेको सहारा देता है तो वह टिकता है, अुस सहारेके आधार पर आगे बढता है और अुसका टिकना और बढ़ना समाजके लिअे हितकारक होता है।

व्यापारमें तो अैसे मौके कभी बार आते हैं। किसी व्यापारीका भारी नुकसान हो जाता है तब यदि दूसरे व्यापारी अुसे कुछ समय तक टिकाये रखनेके लिअे कुछ आश्रय दे देते हैं तो वह फिरसे व्यापारमें जम जाता है। न तो अुसके लेनदारोंको नुकसान होता है और न बाजारमें अव्यवस्था पैदा होती है।

पिता पुत्रको या मित्र मित्रको पूंजी या नौकरी दिलवाकर अुसे जीवनमें 'स्थिर बनाने' का जो प्रयत्न करता है, वह अिसी न्यायसे करता है। यह मदद मिलनेसे वह पराश्रित नहीं बन जाता, बल्कि थोड़ेसे आश्रयसे अधिक स्थिर हो जाता है।

सच बात तो यह है कि मनुष्यको सदा ही पराश्रयकी जरूरत नहीं होती, और न होनी चाहिये। जिस समाजमें अेक वर्ग पराश्रित होकर ही जीवन बिताता हो या बिता सकनेकी स्थितिमें हो, अुसकी रचनामें कोअी तो भी भारी दोष होना चाहिये। परन्तु अिसका

अर्थ यह नहीं होता है कि मनुष्यके लिअे किसी भी समय पराश्रय लेनेका प्रसग नही आ सकता। प्रत्येक सफल व्यक्ति भी यदि अपने जीवनकी जाच करे, तो अुसे मालूम होगा कि अुसके जीवनमें अमुक समय अुसे समाज या मित्रकी ओरसे जो मदद मिली थी अुसके कारण अुसका जीवन वहुत-कुछ सफल वना है।

आश्रय दिया ही न जाय, यह विचार गलत है; अुसी तरह अमुक वर्ग या व्यक्तिको निरन्तर आश्रय देते रहनेमें ही धर्म है, यह विचार भी गलत है। अुचित प्रसंग पर अुचित प्रमाणमें अेक मनुष्यका दूसरे मनुष्यको आश्रय देना कर्तव्य है। यह आश्रय देनेका तरीका यदि अैसा हो कि अुससे आश्रय लेनेवालेको कुछ पुरुषार्थ ही न करना पड़े, तो अुस आश्रयमें गभीर दोष है। लड़के आरामसे खा-पी सकें, अिसलिअे कोअी पिता धन-सग्रह करे तो वह यही दोप करता है। परन्तु संकटके अवसर पर अेक मनुष्य दूसरेको अैसा आश्रय दे जिससे अुसका पुरुषार्थ करनेका अुत्साह वढे और अुसका जीवन आशाहीन न वने, तो अैसा आश्रय लेनेवाले और देनेवाले दोनोको लाभ पहुचाता है; दोनोको मनुष्यताकी ओर वढाता है।

आश्रय देनेका योग्य तरीका खोज निकालनेकी कला जन्मसिद्ध होती है, वह शायद सिखाअी नही जा सकती। किन्तु जैसे यह विचार कि आश्रित वर्ग कभी स्वतंत्र ही नही हो सकता, वह आश्रित ही रहेगा, अेक दिशाकी भूल है, अुसी प्रकार कभी किसीको आश्रय दिया ही न जाय यह विचार दूसरी दिशाकी भूल है। आश्रय और स्वाश्रय दोनोका जीवनमें स्थान है, और अिन दोनोंके वीच तारतम्य वनाये रखनेसे जीवनका स्थायित्व और अभ्युदय सिद्ध होता है।

अिसी तरह स्वमतके अनुसार आचरण निश्चित किया जाय या वहुमतके अनुसार, अिसके निर्णयमें भी तारतम्य रखना जरूरी है। यदि कोअी कहे कि मैं तो सदा अपने मतके अनुसार ही चलूगा तो संभव है वह भी गलत आचरण कर सकता है, और यदि कोअी

कहे कि मैं हमेशा बहुमतके अनुसार ही चलूंगा तो अुसका काम भी दोषपूर्ण हो सकता है।

कहां स्वमतका आग्रह रखा जाय और कहा बहुमतके सामने झुका जाय, यह हर प्रसंग पर न्याय-बुद्धिके किसी तीसरे ही सिद्धान्तसे निश्चित करनेकी आवश्यकता होती है। अिस तीसरे सिद्धान्तकी अवगणना करनेमें तारतम्यका भंग होता है।

अिस प्रकारकी तारतम्य-बुद्धि सामान्य वाचन या शिक्षणसे नहीं आती। वह अनेक बातो पर निर्भर करती है। लेकिन यह समझना जरूरी है कि तारतम्य-बुद्धि अेक महत्त्वकी वस्तु है, अुसमें विरोधी दिखाअी देनेवाले सिद्धान्तोंमें निहित तथ्यांशोका निष्पक्ष स्वीकार अपेक्षित है, और यह कि अिस बातको भूल जानेसे अिस बुद्धिके काममें रुकावट आ जाती है।

अिसका योग्य रीतिसे अुपयोग करना आना जीवन और जगत्के अनुभव पर, अिन अनुभवोका सूक्ष्म विचार करनेकी आदत पर, परिस्थितियों तथा संस्कारोंके चित्त पर होनेवाले परिणामके सूक्ष्म अवलोकन पर, जीवन-सम्बन्धी सच्ची दृष्टि पर, व्यक्तिकी न्याय-बुद्धि पर, परस्पर विरोधी दिखाअी देनेवाले भावोंके सामंजस्य (मेल) पर और पुरुषार्थ पर निर्भर है।

अैसे अनेक अंगोंके गिनानेसे डरनेकी आवश्यकता नही, क्योंकि तारतम्य-बुद्धिका कुछ-न-कुछ अुपयोग तो हरअेक मनुष्य ठीक तरहसे कर ही सकता है। और जब कभी वह अिस बुद्धिका अुपयोग करता है, तब अूपर बतलाये हुअे सभी अंशोका, अज्ञात रूपमें ही क्यो न हो, वह विचार करता है। परन्तु जब किसी अेक सूत्रका जादू अुसे मुग्ध कर लेता है, तब भूल होनेकी संभावना रहती है।

अिस तारतम्य-बुद्धिके अेक दूसरी वृत्तिसे मिल जानेकी संभावना रहती है। वह वृत्ति है सत्यके साथ समझौता (compromise) करनेकी।

मनुष्य किसी प्रसंग पर तारतम्य-बुद्धिका अुपयोग करता है या सत्यसे समझौता करता है, यह अधिकतर अुसकी प्रामाणिकता और दूसरी चरित्र-शुद्धि तथा जीवन-संबंधी दृष्टि पर अवलम्बित होता है। हो सकता है कि जिन निर्णय पर अेक मनुष्य तारतम्य-बुद्धिसे पहुचे अुसी पर दूसरा स्वार्थबुद्धिसे पहुचे। अमुक मौके पर कुत्तोंको मारनेमें कोअी हर्ज नही — गांधीजीके अैसा निर्णय देनेमें और कुत्तोंसे तकलीफ अुठाये हुअे किसी दूसरे आदमीके अुस निर्णयका स्वागत करनेमें दोनोकी तारतम्य-बुद्धिमें बहुत फर्क हो सकता है, जिसका निर्णय अुनके जीवनके दूसरे भाग परसे किया जा सकता है।

अिस प्रकार तारतम्य-बुद्धिका निर्णय अकसर लोकवृत्तिके अनुकूल हो सकता है। लेकिन भेद अितना ही है कि अुसका अनुकूल होना हमेशा ही संभव नही।

तारतम्य-बुद्धि त्रिकालाबाधित निर्णय नही करती। वह तो प्राप्त परिस्थितिमें न्याय्य निर्णय कौनसा है अितना ही तय करती है। अुस परिस्थितिको निर्माण करनेवाले सयोगोमें फर्क पडे, तो भी अुसी निर्णयका कायम रहना सभव नही है। लेकिन अुस समय तार-तम्य बुद्धि अिस बातकी सावधानी रखनेका प्रयत्न करेगी कि अुस निर्णयमें कोअी दोष न निकाला जा सके।

प्रस्थान, कार्तिक १९८४

१०

बुद्धि किस प्रकार विकसित हो?

१

बुद्धि और तर्क

मुझसे पूछा गया है कि बालककी बुद्धि किस प्रकार खिल सकती है। अिस सबंधमें 'केळवणीना पाया'* (शिक्षाकी बुनियाद) पुस्तकमें मैंने जो विचार प्रस्तुत किये है, अुन्हें पढ लेना चाहिये। फिर भी अुनकी पूर्तिमें मैं यहा कुछ बातें पेश करूंगा।

सबसे पहले बुद्धिका अर्थ और बुद्धि तथा तर्कके बीचका भेद स्पष्ट समझ लेनेकी जरूरत है। हमारे देशमें यह भूल बार बार होती है और तर्ककुशल मनुष्योकी गिनती बुद्धिमानोमें होती है। परंतु बुद्धि और तर्क अेक नही हैं। तर्ककुशल मनुष्य मन्द बुद्धिका हो सकता है और बुद्धिमान मनुष्यमें तर्क दौड़ानेकी शक्ति कम हो सकती है।

तर्कका अर्थ है व्यवस्थित रीतिसे अेक विचारसे दूसरे विचार पर जाने और सामनेवाले मनुष्यके अिस प्रकारके प्रयत्नमें जो अव्यवस्थितता हो अुसे बतलानेकी शक्ति। अुस 'फकीर और खोये हुअे अूट' की कहानीमें फकीरकी तर्ककुशलता तथा चोरीका आरोप लगानेवाले व्यापारीकी विचार करनेकी अव्यवस्था दिखाअी देती है। अुसमें फकीरका किया हुआ तर्क सच निकला, यह कुछ हद तक तो सयोग ही माना जायगा। अुसने व्यापारीकी विचार करनेकी पद्धतिमें दोप अवश्य दिखा दिया, लेकिन यह असंभव नही कि वह फकीर चोर ही हो।

हमारे पंडित, वकील और पुलिस-विभागके लोग अधिकतर व्यवस्थित रीतिसे तर्क करनेकी शक्तिको विकसित करते हैं। बुद्धिके लिअे प्रसिद्ध नागर,+ महाराष्ट्रीय ब्राह्मण, और बंगाली विद्वान् ज्यादातर

---

* यह पुस्तक हिन्दीमें निकट भविष्यमें प्रकाशित होगी।

\+ नागर जातिके लोग ।

तर्ककुशल ही होते हैं। अिसके विपरीत कहा जा सकता है कि मोटर, विमान आदि यंत्रोंके चलानेवालोंको, सेनापति, नौकापति आदिको, तथा खिलाड़ियोंको हर क्षण अपनी बुद्धिका अुपयोग करना पड़ता है। अैसा नहीं कहा जा सकता कि अुनकी तर्कशक्ति बहुत तीव्र होती है। लेकिन तत्काल निश्चय करनेकी शक्तिके बिना अुनका काम बिलकुल नहीं चल सकता।

तर्कशक्ति निकम्मी वस्तु नहीं है। लेकिन बुद्धि अुससे भिन्न शक्ति है। तर्क और बुद्धिकी व्याख्या यों की जा सकती है—तर्क विचारका विकास करनेकी शक्तिको कहते हैं और बुद्धि आचारका निर्णय करनेकी शक्तिको कहते हैं। अमुक परिस्थितिमें किस प्रकार बरताव किया जाय, यह निःसंशय रूपमें जो निश्चित कर सके वह बुद्धिमान कहलायेगा। जो अपना कर्तव्य निश्चित न कर सके और संशय या विचारमें पड़ जाय, परेशानीमें पड़ जाय, वह विद्वान् हो सकता है, होशियार हो सकता है, परंतु बुद्धिमान नहीं माना जा सकता।*

तर्ककुशल मनुष्य दूसरेको सयानी सलाह दे सकता है, और दूसरेके सयानपनमें गलतियां भी निकाल सकता है। हो सकता है कि बुद्धिमान मनुष्य स्वयं अमुक रीतिसे बरताव करनेका निर्णय क्यों करता है यह समझा न सके; लेकिन अुसे अपने निर्णयके बारेमें शंका नहीं रहती। अुसके निर्णयमें भूल नहीं हो सकती, अैसी बात नहीं। परंतु अुस क्षण अुसे अपने निर्णयके विषयमें शंका नहीं होती।

बुद्धि सदा निश्चित और अेकरूप ही होती है। वह अेकसमान (स्थितप्रज्ञ समाधिस्थ) या बहुशाखावाली हो सकती है, लेकिन अेक

---

* पंडित जवाहरलाल, श्री राजगोपालाचार्य, श्री भूलाभाअी देसाअी तर्कशक्तिके अुत्तम नमूने कहे जा सकते हैं। पूज्य गांधीजी तुरन्त ही निर्णय पर पहुंच जाते हैं, और वह निर्णय सबको मान्य भी हो सकता है; लेकिन अुसके समर्थनमें दी जानेवाली दलीलोंसे वे सबको सन्तुष्ट नहीं कर सकते।

समयमें वह अेक ही अुत्तर देती है। अिसे बीजगणितकी पद्धतिसे समझावें तो $क्ष^2 - ९क्ष + २० = ०$ अिस समीकरणमें क्ष की कीमत विकल्पसे ४ या ५ बतानी पड़ेगी। तर्कका यहां अन्त हो जाता है। लेकिन दृष्टिके सामनेके संयोगोंको देखते हुअे अुसकी कीमत ४ ही हो सकती है, ५ कभी नहीं हो सकती, यह बुद्धि ठहराती है; अिन संयोगोंमें जो क्ष की कीमत निश्चित रूपसे ४ ठहरा सके वह बुद्धिमान कहलायेगा, फिर भले अुसे यह न मालूम हो कि दूसरे कोअी संयोगोंमें अुसकी कीमत ५ भी हो सकती है।

आम तौर पर स्वप्नमें मनुष्यकी बुद्धि ही काम करती है, तर्कशक्ति नहीं। अिसलिअे कुत्तेके सिर पर सींग देखकर या अपनेको पंख फूटे देखकर अुसे यह शक नहीं होता कि 'यह कैसे हो सकता है'। पहले क्षणमें जिस चीजको वह सींगोंवाला कुत्ता ठहराता है, दूसरे क्षण अुसे ताबूतका शेर समझता है और तीसरे क्षण अपनी भैंस मानता है। परंतु अस्थिर होने पर भी वह हर क्षण निःसंशय रहता है।

निःसंशयता बुद्धिका स्वभाव ही है। स्थिरता अुसकी विकसित स्थिति है। अेकसापन अुसकी तीक्ष्णता है। सत्यदर्शिता अुसका आरोग्य है। तर्कशक्ति और पाण्डित्य अुसके वैभव हैं।

अैसी बुद्धिका विकास किस प्रकार हो, अिस पर हमें विचार करना है।

२

बुद्धि और धृति

जिस प्रकार बुद्धि और तर्कके बीचका भेद समझना जरूरी है, अुसी प्रकार बुद्धि और धृतिके बीचका भेद जानना भी जरूरी है।

भगवद्गीतामें धृतिका अुल्लेख है, और अुसके सात्त्विक, राजस और तामस भेद भी बतलाये गये हैं। फिर भी, साधारणतः हमारे देशमें

धृतिका कहीं भी विचार किया गया हो अैसा मेरे जाननेमें नहीं आया। यह प्राणीके भीतर अेक महत्त्वकी शक्ति है और आजके यंत्रयुगमें अिसका महत्त्व पहलेसे कहीं ज्यादा बढ गया है। अभी अभी मैंने किन्ही लेखकका यह वाक्य पढा है कि अिस युगके युद्धका अर्थ है आमने-सामनेकी विरोधी धृतियोंका तीव्र मुकाबला (war of nerves)।

हमारे देशकी प्राचीन वर्णव्यवस्थामें क्षत्रियों और शूद्रोंकी धृति अधिक विकसित होती थी। ब्राह्मणकी धृति अुससे कम और वैश्यकी सबसे कमजोर रहती थी। अिसका अुदाहरण परशुराम और कर्णकी कथामें मिलता है। कर्णने अपने-आपको ब्राह्मण कहकर परशुरामसे अस्त्रविद्या सीखी। किन्तु अेक दिन परशुराम अुसकी गोदमें सिर रखकर सो रहे थे, तब अेक वर्रने कर्णको काटा। परशुरामकी नींद न खराब हो अिसलिअे कर्णने अुसकी पीडा जरा भी हिले-डुले बिना सहन कर ली। आखिर जब गरम खूनकी धार बहकर परशुरामके गाल तक पहुंची तो वे जाग अुठे। अिस परसे अुन्हें लगा कि अपने ज्ञानतंतुओं पर अितना काबू रखनेकी शक्ति क्षत्रियके सिवा दूसरे किसीमें नहीं हो सकती, और अिस तरह अुन्होंने कर्णका वर्ण पहचान लिया।

अिससे हम धृतिका अर्थ समझ सकते हैं। धृतिका अर्थ है स्नायुओं तथा चित्तको हिलानेवाले ज्ञानतंतुओं पर संपूर्ण अधिकार। अिसीको अिच्छाशक्ति भी कहा जा सकता है। कैसी भी स्थितिमें हाथमें पकडी हुअी चीज न छोड़ना, न कांपना, पैरोंका न हिलना, ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियोंका वशके बाहर न जाना, मनका न घबराना तथा बुद्धि (आचरणका निर्णय करनेवाली शक्ति) का मन्द न पड़ना — ये सब धृतिके लक्षण हैं।

बुद्धिके विकासमें तर्कशक्तिकी अपेक्षा धृति ज्यादा महत्त्वकी चीज है। सच्ची बात समझमें आने पर भी निर्णय नहीं किया जा सके, निर्णयके बाद भी अुस पर आचरण नहीं किया जा सके, आरंभ

करनेके वाद भी अन्त तक न टिका जा सके—ये सव धृतिके दोषोंके लक्षण हैं।

३

वुद्धि और साहस

गीतामें कहा गया है: 'नास्ति वुद्धिरयुक्तस्य'।

अिसका अर्थ यह हुआ कि योगके विना वुद्धि पैदा नहीं हो सकती।

यहां योगका अर्थ समत्व किया गया है। गीताके अनुसार समत्वका अर्थ है सुख-दु:ख, लाभ-हानि, यश-अपयशमें समता। पढनेसे ये शव्द वहुत ही वडी और अूंची आध्यात्मिक स्थिति वतलानेवाले मालूम होते हैं। विचार करने पर मालूम होगा कि अुन्हें सक्षेपमें साहस भी कहा जा सकता है। जव यह निर्णय करना होता है कि' छोटेसे छोटा काम किया जाय या नहीं, तव कुछ-न-कुछ खतरा तो अुठाना ही पड़ता है। खतरेका अर्थ यही है कि किसी भी कारणसे अुस काममें विघ्न पैदा होनेकी संभावना है, और यदि विघ्न आया तो कुछ-न-कुछ दु:ख, अपयश या हानि भोगनी ही पड़ेगी। अिसके अलावा, यदि वह काम निर्विघ्न पूरा हो तो भी अपेक्षित सुख, यश या लाभके वदले अुलटे परिणाम भी आ सकते हैं। केवल तीन फुटकी अूचाअीसे ही कूदना हो और मनुष्य यह निर्णय करना चाहता हो कि कूदा जाय या न कूदा जाय, तो जव तक वह अिस सशयमें अुलझा रहेगा कि 'कहीं चोट लग गअी तो' तव तक वह खडा ही रहेगा। अिस संशयको हटानेमें तर्क नहीं वल्कि साहसकी वृत्ति मदद करती है। 'चोट क्यों लगेगी?' अथवा 'लगेगी तो भले लगे' जव मनुष्यमें अैसी वृत्ति अुठे तभी वह निर्णय कर सकता है। 'चोट लगेगी तो भले लगे' की वृत्तिमें सुख-दुःखके प्रति अुस हद तक समताकी वृत्ति निर्माण होती है। अिसी प्रकार फीस भरकर परीक्षामें

बैठना या नही यह तय करना हो और यदि यह भय बना रहे कि 'नापास हुआ तो पैसे बेकार जायंगे', तो फार्म भरनेकी हिम्मत नही होगी। 'परिश्रम करता हूं, पास होनेकी आशा है, फिर जो होना होगा सो होगा,' यह वृत्ति होगी तभी कोअी विद्यार्थी परीक्षामे बैठ सकेगा। अिसलिअे यश-अपयशके बारेमें कमसे कम अुतने समयके लिअे तो समता होनी ही चाहिये। अिस प्रकारके निर्णयके लिअे आवश्यक क्षणिक समताको साहस और आरभसे लेकर परिणाम आनेके बाद भी बनी रहनेवाली समताको योग कहा जा सकता है।

अैसी साहसरूपी समताके बिना बुद्धि पैदा ही नही हो सकती, अर्थात् किसी निर्णय पर पहुंचा नही जा सकता।

४

प्रसन्नता

'नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य' वाले अूपरके श्लोकमें गीतामें कहा गया है कि 'प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धि. पर्यवतिष्ठते'। मतलब यह है कि बुद्धि अुत्पन्न करनेके लिअे जैसे योग, समता और साहसकी आवश्यकता है, वैसे ही अुसके विकासके लिअे मनकी प्रसन्नता भी आवश्यक है।

जो मनुष्य आचरणके बारेमें कोअी निर्णय कर लेता है, अुसके विषयमें यह तो कहा ही जायगा कि अुसने बुद्धिका अुपयोग किया है। लेकिन वह निर्णय सही भी हो सकता है और गलत भी; पक्का यानी स्थिर भी हो सकता है और कच्चा यानी कुछ समयमें बदला जानेवाला भी हो सकता है। यह तो परिणामसे मालूम होगा।

परतु जिसके निर्णय कच्चे और अस्थिर ही हुआ करते हो, अुसकी बुद्धिको हम विकसित बुद्धि नही कह सकते। कभी कभी तो अैसी बुद्धिका होना-न-होना अेकसा ही मालूम होगा। पक्के, स्थिर निर्णय करनेवालेकी बुद्धि ही प्रफुल्ल — विकसित कही जा सकेगी।

तो गीताके श्लोकका अर्थ हुआ कि अैसी स्थिर बुद्धिके लिअे मनकी प्रसन्नता आवश्यक है।

यहां प्रसन्नताका अर्थ समझ लेना आवश्यक है। प्रसन्नताका अर्थ हर्ष या आनन्दका अुभार न समझा जाय। यह कहनेकी तो आवश्यकता ही नहीं कि अुसमें शोक, विषाद, अुद्वेग आदि नहीं हो सकते। न यह समझानेकी ही आवश्यकता है कि मनमें जब शोक या अुद्वेग भरा हो तब बुद्धि बराबर काम नहीं कर सकती। लेकिन हर्ष या आनन्दके आवेशमें भी बुद्धि अच्छी तरह काम नहीं कर सकती। किसी भी तरहकी भावना, फिर वह अच्छी हो या बुरी, मनुष्यमें विकार पैदा कर देती है, वह अुसे आचार या विचारके विषयके प्रति तटस्थ नहीं रहने दे सकती। अिसलिअे हर्ष या शोकका आवेग बुद्धिकी गतिके लिअे विघ्नरूप है। अिसलिअे मन जब हर्ष-शोकके आवेगसे मुक्त हो तभी बुद्धि भलीभांति काम कर सकती है। चित्तकी अिस दशाको ही प्रसन्नता कहते हैं। अुसमें प्रकृति स्वाभाविक, आवेगरहित, शान्त और प्रसन्न होती है। मनुष्य व्यायाम करके ठण्डे पानीसे नहा-कर बैठा हो, अथवा काम करनेके बाद किसी टीले पर जाकर हवासे थकावट दूर करके आरामसे बैठा हो, अुस समयके अुसके चित्तके आनन्दके साथ प्रसन्नताकी तुलना की जा सकती है। बुद्धिके विकासके लिअे अैसी प्रसन्नता निरन्तर रहनी चाहिये।

अिस परसे अनायास ही हमें अेक प्रश्नका निर्णय मिल जाता है। मार-पीट, धमकी आदि विषाद पैदा करनेवाले तरीकोंका जिन पर प्रयोग होता है, अुनकी बुद्धि कभी स्थिर नहीं हो सकती, अर्थात् खिल नहीं सकती।

यह बात समझनेमें भले कठिन मालूम हो, परन्तु अिसीके साथ अिसका दूसरा किनारा भी बुद्धिके विकासमें सहायक नहीं होता; अर्थात्, आनन्द आदिका अुन्माद भी बुद्धिका पोषक नहीं है। अुससे

बुद्धि गहरी नही हो सकती, वह अूपर-अूपरसे ही निर्णय करनेवाली बनती है। विशेषत: जब अिन्द्रियो या भावनाओको प्रलोभनमें डालनेवाले साधनोंसे आनन्द पैदा किया जाता है, तब बुद्धिमें चातुर्य आता तो मालूम होता है, परन्तु अुसमें गहरापन नही होता।

अिस तरह बुद्धि और प्रसन्नताका परस्पर संबंध है।

५

अुपसंहार

अिस प्रकार हमने तर्क और बुद्धिके बीचका भेद देख लिया। यह भेद समझना बहुत जरूरी है। क्योंकि साधारणतया जो बुद्धिमान पण्डित माने जाते है, वे तर्ककुशल ही होते है। अिसके विपरीत, अविद्वान्, तर्क-ज्ञान-रहित मनुष्यके बहुत बुद्धिमान होने पर भी अुसे अज्ञान माननेकी भूल होती है। बुद्धिका क्षेत्र विचारका नही, बल्कि आचारका निर्णय करनेका है, और अुसके साधन दलीलें नहीं, बल्कि धृति, साहस, प्रसन्नता आदि है — यह बात हम याद रखें तो दोनोंके बीच कभी गड़बड़ी नही हो सकती।

बुद्धिका अुपयोग करनेके लिअे धृति — किसी वस्तुसे चिपटे रहनेकी शक्ति — चाहिये, साहस बनाये रखने जितनी समता चाहिये, और चित्तकी प्रसन्नता चाहिये।

अिन सबके लिअे पद्धतिपूर्वक शिक्षा मिलनी चाहिये, और अिनका अभ्यास या आदत होनी चाहिये।

चूंकि आचरणका निर्णय करनेका काम बुद्धिके क्षेत्रमें आता है, अिसलिअे अुसकी आदत डालनेके लिअे मनुष्यके पास कुछ-न-कुछ काम खुद करनेके लिअे सदा ही रहना चाहिये। काम छोटा हो या बड़ा अिसका कोअी महत्त्व नही है। लेकिन वह बैठे-बैठे दलीलें करने या अंदाज लगानेका ही नही होना चाहिये। वह काम अैसा होना चाहिये जिसमें मनुष्यको 'अिस प्रकार किया जाय या अुस प्रकार किया जाय'

का निर्णय वार-वार करते रहनेकी जरूरत पड़ती हो। वह यन्त्रवत् करते रहनेका काम नहीं होना चाहिये।

अिसके अलावा, कुछ काम अैसे भी होने चाहिये, जिनमे दृढता-पूर्वक लगे रहनेके लिअे अपने मनको मजबूत रखनेकी आवश्यकता हो। साथ ही यदि अैसी परिस्थिति भी हो जिसमें दृढ रहना अनिवार्य हो जाय तो अधिक लाभ होगा।

'शिक्षण अने साहित्य', जनवरी-अप्रैल १९४२

शिक्षामें विवेक

दूसरा भाग

प्रवृत्ति-विवेक

१
स्कूलोंके वार्षिक सम्मेलन

कुछ वर्षोंसे मुझे शालाओंके वार्षिक सम्मेलनोंमें जाना पड़ता है। पाठकोंमें से भी कओ लोगोंको अैसा अवसर प्राप्त होता होगा। सम्मेलनोंमें संगीत और नाट्यकलाका प्रदर्शन अेक साधारण बात हो गओ है। जो बालक अच्छी तरह काम करके पारितोषिक प्राप्त करते हैं, अुनके मातापिताको अुनकी कुशलतासे आनन्द होता होगा। जो काम करना हो वह अुत्तम ढंगसे करना आ जाये तो अुससे भी बालकका विकास होता है; अिस दृष्टिसे विद्यार्थीकी प्रगतिको देखकर यदि पालकोंको आनन्द हो तो वह स्वाभाविक है।

परंतु दूसरी दृष्टिसे ये सम्मेलन मुझे अिस बातके चिह्न मालूम होते हैं कि हमारी स्थिति कितनी दयाजनक है। गुलामोंके व्यापारके जमानेमें गुलामोंका बाजार लगता था। वहां खरीदार बिकनेके लिअे आये हुअे गुलाम लड़कोंको दौड़ाते, कुदाते, नचाते, अुनके दांत गिनते, हाथ-पैरोंकी जांच करते और अुनकी विशेष योग्यताओंकी परीक्षा लेते थे। बेचनेवाले भी यह दिखानेके लिअे कि गुलामोंको खुद कितनी अच्छी तालीम दे सकते हैं, लड़कोंको कुछ खास चालाकियां सिखाते थे। विक्रेताकी गुलामको तालीम देनेकी कुशलताकी परीक्षा और खुद गुलामकी भी परीक्षा बाजारमें होती थी, अिसलिअे दोनोंको बाजारके लिअे विशेष सावधानी और अुत्साह रखना पड़ता था। गुलाम होते हुअे भी वह हम-जैसा ही मनुष्य होता था, अिसलिअे अुसे भी अपनी होशियारी पर गर्व होता था। अिस कारणसे वह भी अपनी होशियारी बतलानेके लिअे अुत्सुक रहता था।

कुछ सम्मेलनोंमें भाग लेनेके बाद मुझे अैसा लगने लगा है कि ये सम्मेलन भी अुन गुलामोंके बाजारों जैसे ही प्रदर्शन हैं। ये अुन

बाजारों जितने मलिन, नीच या जानबूझकर स्वार्थपूर्ण तो नहीं होते, फिर भी अिन सम्मेलनोंमें शिक्षकोंको अपनी सिखानेकी योग्यता दिखानेका और बालकोंको अपनी होशियारी बतलानेका लालच रहता ही है। अिस लालचके कारण असे सम्मेलनोंके समय कुछ विद्यार्थियों पर अत्यधिक बोझ डाला जाता है, और अुत्साहके कारण विद्यार्थी भी अुसे अुठाते हैं। कुछ समय पहले मैं अेक सम्मेलनमें गया था। अुसमें अेक लड़केका कण्ठ बहुत मीठा होनेसे सारे संमेलनमें कोअी पच्चीस-तीस गीत गानेका काम अुसे सौंपा गया था। अुस विद्यार्थी पर पड़नेवाले बोझसे मुझे बड़ा दु:ख हुआ; और मैंने देखा कि समारंभके अन्तमें अुस लड़केका कण्ठ बिलकुल बैठ गया था। कुछ जगहों पर रातके बारह-अेक बजे तक नाटच-प्रयोग चलते रहते हैं। कभी-कभी लड़के अपने पाठ या गीतको केवल ग्रामोफोनके रेकार्डकी तरह बोल जाते हैं। अुनकी स्तब्ध और अर्थहीन आंखें यह बतला देती हैं कि अुनका अपने पाठके अर्थकी ओर जरा भी ध्यान नहीं है; अुनका सारा ध्यान अिसी बात पर केन्द्रित हो गया है कि पाठके शब्दोंमें भूल न हो। संमेलनोंका अिस प्रकारका अुपयोग दोषपूर्ण है।

अिसके अलावा अिसमें अेक प्रकारकी आत्म-प्रवंचना भी होती है। असे सम्मेलनोंमें विद्यार्थियोंसे अच्छा काम करवाकर शिक्षक अपने-आपको कृतार्थ समझ लेते हैं, लड़के मान लेते हैं कि खूब आनन्द मिला, और लड़कोंके माता-पिता घर जाकर अिस संतोषसे निश्चिन्त हो जाते हैं कि अुनके लड़कोंकी पढ़ाअी अच्छी चल रही है। मेरी रायमें तो यह शिक्षाका अेक गौण अंग है।

यों कहकर मैं शिक्षकोंके सिर दोष मढ़ना नहीं चाहता। शिक्षक, विद्यार्थी, पालक या माता-पिता सभी प्रथाके दास हैं। जहां अेक प्रथा लोकप्रिय बनी कि हम अुसकी ओर खिंचने लगते हैं। सम्मेलनों और नाटच-प्रयोगोंका जमाना शुरू हुआ कि हम अुसीमें शिक्षाका सार समाया हुआ मानने लगे हैं। असी ही अेक प्रथा कुछ समयसे हस्त-

लिखित मासिकोंकी और संगीतकी शिक्षाकी भी चल पडी है। हरअेक प्रथामें कुछ-न-कुछ गुण तो रहते ही हैं। परंतु जब हम प्रथाके स्वामी न रहकर अुसके दास बनने लगते है, तब अुसके लाभ व्यर्थ हो जाते हैं, और शायद विषरूप भी हो जाते है। किसी भी प्रथासे लाभ अुठाना हो तो अुसका हमें संयमपूर्वक ही पोषण करना चाहिये। आनन्द-प्राप्तिके लिअे निर्माण हुअी प्रथाके विषयमें यह ध्यान रखना विशेष रूपसे आवश्यक है। नाट्य-प्रयोग, सगीत, मासिक-लेखन आदिमें हमें आनन्द आता हो तो भी, मेरी नम्र रायमें, अिस आनन्दके योग्य पोषणके लिअे हमें सब अतिशयताओंका त्याग करना चाहिये। अेकाध छोटा-सा, सरल, भावपूर्ण और अर्थ समझकर याद किया हुआ पाठ, बालकोंके स्वभावके अनुकूल नाट्य-प्रयोग, अेकाध सादा और सद्भाववाला संगीत, अेकाध छोटासा अच्छा मासिक — यदि अितनेसे हमें संतोष न हो तो समझ लेना चाहिये कि जैसे हममें से बहुतेरोंकी जीभ अितनी बिगड़ी हुअी होती है कि बगैर शक्करके दूधमें रही मिठासका अुन्हें पता ही नहीं चलता, अुसी तरह हमारी दूसरी अिन्द्रियां भी अुतनी ही जड़ हो गअी हैं।

दूसरी ओर ये सम्मेलन हमारी प्रजाकी मनोवृत्तिका अच्छी तरह भान कराते हैं। अेक छोटेसे गांवसे लेकर शहर तककी हमारी सारी प्रजाको कौनसी चीजें पसन्द आती है? देहातके आचार्य अपना कार्य-क्रम अिस ढंगसे जमाते हैं कि शालाके कामका विवरण तथा अध्यक्षका भाषण आरंभमें या बीचमें रहे और नाट्य-प्रयोग अन्तमें या आरंभ और अन्तमें रहे। अिसका कारण यह है कि पालक लड़कोंकी प्रगति और कल्याणकी बातें सुनना नहीं चाहते; अुन्हें तो नाटक और गायनका आनन्द लेना होता है। अिसलिअे प्रयोगोंके समय शान्ति रहती है, और विवरण तथा भाषणके समय गडबड़ी मच जाती है। जैसे शहरमें वैसे ही देहातमें हमें विलास ही पसन्द होता है। अिसलिअे अपने बालकोंकी भी विलास-वृत्तियोंका पोषण करनेमें हम अुनका शिक्षण मानते हैं। कुछ

शालाओंके विवरणोंमें आवश्यकताओंके खानेमें सगीत और व्यायामके शिक्षकोकी आवश्यकता वतलाअी जाती है। मैंने प्रायः यह देखा है कि व्यायामकी अपेक्षा सगीतकी कमी जल्दी ही दूर की जाती है। हमे शौर्यकी अपेक्षा विलास अधिक प्रिय है, अिसलिअे नाटचकला, सगीतकला, चित्रकला, काव्यकला, कहानी-कला आदिकी ओर हम खूब ध्यान दे रहे हैं। हिन्दुस्तानमें आनेके वाद गाधीजीने संगीत, कवायद और बुनाअीकी शिक्षा पर वहुत जोर दिया। अुनमें मे हमने मगीतको तुरन्त स्वीकार कर लिया, क्योंकि वह पसीना वहाये विना अिन्द्रियोंको आनन्द देनेवाली चीज है। हमें आनन्द तो चाहिये, किन्तु पमीना वहाना अच्छा नही लगता। अिसलिअे दूसरी वातोकी ओर हमने ध्यान नहीं दिया या अुनका विरोध किया है।

अिस विलासकी रुचिके कारण ही हमें चरखा शालामें पुसाता नही मालूम होता। असहयोग परसे हमारा विश्वास अुठता जा रहा है, अिसलिअे राष्ट्रीय शालाओंमें विद्यार्थियोंकी संख्या भी घटने लगी है। अुनमें अहमदावादकी नअी गुजराती शाला जैसी कुछ शालायें अपवादरूप मालूम होती हैं। किन्तु अिसका कारण यह नहीं कि अुन विद्यार्थियोंके पालकोंका राष्ट्रीय शिक्षामें विश्वास है, वल्कि यह है कि राष्ट्रीय शिक्षाके खास सिद्धान्तोंका स्पर्श अुन शालाओ तक नही पहुंचा है। चरखे पर जरा विशेष जोर देनेके लिअे कहा जाय या कोअी अछूत वालक वहा वैठनेके लिअे आ जाय, तो आचार्यजीकी छाती धडकने लगेगी। अैसी दयाजनक स्थिति हमारी है। हमें विलास अच्छा लगता है, अिसीलिअे हाथ-पैरका श्रम करानेवाली शिक्षा पसन्द नही आती। विलासकी प्राप्तिके लिअे धन और फुरसत दोनों चाहिये। अिसलिअे हम अैसी शिक्षाको अच्छी मानते हैं, जो हमारी विलासकी वृत्तियोंको वढाये, थोड़ीसी मेहनतमें धनका ढेर खड़ा कर देनेकी शक्ति दे, तथा हमें अपने हाथ-पैर हिलानेके लिअे मजबूर न करे। यदि महात्मा गांधी अैसी कोअी युक्ति ढूढ निकालें

जिससे न्यूयार्कके फीचर या लीव्हरपुलके वाजार पर होनेवाले सट्टे अचूक रूपमें हमारे ही लाभमें निकलें और अुसकी शिक्षा देनेकी व्यवस्था विद्यापीठमें हो, तो आज विद्यापीठ विद्यार्थियोंसे अुभर पड़ेगा। परन्तु गांधीजी तो हमें मजदूरी करनेके लिअे कहते हैं, प्रामाणिक श्रमसे जितना कमाया जा सके अुतनी कमाअीसे गुजारा करनेके लिअे कहते हैं। वह हमसे नही हो सकता। हमारे वालकोंके सामने अैसा आदर्श रखना भी हमें दु.खदायी मालूम होता है।

अस्तु। ये पाठशालायें अिस सिद्धान्तसे नही चलती। वल्कि अुन्हें अैसी अच्छी प्राथमिक शालायें वनानेकी कोशिश रहती है, जो मध्यम वर्ग या अुससे थोडे अधिक धनी वर्गके रहन-सहन और सुशिक्षाके खयालोंके अनुकूल हो,। अिसलिअे अुनमें म्युनिसिपैलिटीकी प्राथमिक शालाओंसे विशेष सुविधाओंवाली (more liberal) शिक्षा देनेकी व्यवस्था रहती है। यही दृष्टि सामने रखकर हम अुन शालाओंके वारेमें यहां कुछ विचार करें।

यदि हम अिसके कारणोंकी जाच करें कि शालाओको अैसे सम्मेलन करनेकी जरूरत क्यों होती है, तो दिखाअी देगा कि आम तौर पर माता-पिता अपने वालकोकी ओर लापरवाह रहते हैं। वह लापरवाही अिस हद तक तो नहीं होती कि लडका पढे तो पढे, न पढे तो न पढ़े। परतु हर महीने ५–७–१० रुपये खर्च करके आसपास जो भी अच्छी शाला हो वहां वालकको वैठाकर, वह जो पुस्तकें वगैरा मांगे अुसका प्रवंध करके और जरूरत हो तो अेकाध खानगी शिक्षक रखकर माता-पिताको लगता है कि अुन्होंने वालकोकी शिक्षाके सवंधमें अपना कर्तव्य पूरा कर दिया। यदि लडकेमें कोअी खास अवगुण न हो और वह सीधा हो, तो अितनी व्यवस्थाके वाद माता-पिताको लगने लगता है कि वस सारी जिम्मेदारी पूरी हो गअी। अैसे समेलनोमे वह कुछ कर दिखाता है तभी माता-पिताको मालूम होता है कि लडका कुछ प्रगति कर रहा है; शालाका मकान देखनेका प्रसंग भी तभी

आता है। पालक कमसे कम अेक ही वार शालामे आ जायं, अिसके लिअे शिक्षकोको अितना आडवर करना पड़ता है।

परतु अच्छीसे अच्छी शालामें लडकोको वैठा देनेसे ही पालकोका कर्तव्य पूरा नही हो जाता। अच्छीसे अच्छी शाला विशेष अच्छी क्यो नही होती, अिसका अुन्हें विचार करना चाहिये। यह विचार करनेका भार वे शिक्षको या व्यवस्थापकों पर डाल देते हैं। यदि पालकोको अपने आदर्शोंके अनुसार भी वालकोको अच्छीसे अच्छी शिक्षा देनी हो तो वह अिस रीतिसे नहीं दी जा सकती। साधारणत. माता-पिताकी यह वृत्ति होती है कि शालाको जरूरत हो तो वह अेककी जगह दो रुपया फीस ले ले, परंतु हमें वालकोकी शिक्षाके विषयमें किसी तरह भी चिन्ता करनेकी जरूरत न रह जानी चाहिये, अैसा प्रवध होना चाहिये कि अिस वारेमें हमें कुछ देखना ही न पडे। यह स्थिति मै सर्वत्र अितनी ज्यादा सामान्य रूपमें फैली हुअी देखता हू कि मुझे कठोर वनकर कहना पडता है कि अैसे लोग गृहस्थाश्रमी और माता-पिता वननेके लिअे सर्वथा अयोग्य हैं। पाठक मुझे अपने अिन शब्दोंके लिअे क्षमा करें। अेक तो मै अुम्रमे छोटा हू और दूसरे मुझ पर पालकपनका वोझ नही है, अिसलिअे ये शब्द कहनेका मुझे अधिकार नही हैं। परंतु मुझे लगता है कि अिसमें मै अतिशयोक्ति नही कर रहा हू। माता-पिता अपने वालकोंके लिअे धन वढानेकी अवश्य ही तन-तोड मेहनत करते हैं, किन्तु वालकोकी आन्तरिक पूजी वढानेके लिअे अुन्हें लापरवाहीसे दूसरोके सुपुर्द किया जाता है, यह मुझे ठीक नही मालूम होता। यदि पालक शालाके वारेमें विचार करते हो तो, अुदाहरणार्थ, नअी गुजराती शालाकी अैसी दयाजनक स्थिति अुन्हें असह्य क्यो न लगनी चाहिये? पाच-पाच सालसे यह शाला अेक वाड़ीमें लग रही है, अुसके वर्गोंके वीचके परदे कच्ची चटाअीके हैं। वहा न तो वडा मैदान है, न कोअी वगीचा है। अेक सकडी जगहमें शिक्षकोने परिश्रम करके जितना कुछ

कर लिया अुतना ही है। साधारणतः शिक्षकोंकी आवाज जोरकी होती है। अिस स्थितिमें जब वर्ग चलते होंगे, तब यह तो हो ही नही सकता कि अेक वर्गका शोर दूसरे वर्गके काममें बाधक न बने। अहमदाबाद कोअी गरीब या छोटासा गांव नही है। लड़कोंको सब सुविधाओंवाला शिक्षण (liberal education) देनेकी अिच्छा रखनेवाले लोगोंकी शालाकी स्थिति अितनी विचित्र नही होनी चाहिये। अहमदाबादको शोभा देनेवाली शाला तो अेक बडे बगीचेके बीच सादे किन्तु शान्तिपूर्ण और सब प्रकारकी सुविधाओं-वाले मकानमें होनी चाहिये; और अुसमें प्रवेश करते ही मन प्रफुल्ल हो जाना चाहिये। मुझे विश्वास है कि यदि कोअी खानगी साहससे अैसी सुविधाओंवाली शाला आरंभ करे, तो अहमदाबादके निवासी अधिक फीस देकर भी अपने बालकोंको अुसमें भेजेंगे। लेकिन जो शालायें आज चल रही हैं वे क्यों नही सुधरतीं, अिसका विचार करनेकी हमें फुरसत ही नही होती। मुझे अिसी बातका बडा दुःख होता है कि हमारी बुद्धि अितनी स्थिर नही है कि हम गरीबी और सादगीको आदर्श मान लें; हमें भी पश्चिमके लोगों जैसा ही सुख-सुविधा, आनन्द और विविधतावाला जीवन चाहिये; फिर भी यह सब प्राप्त करनेके लिअे अुन लोगों जैसी मेहनत करनेकी वृत्ति हममें नही है। कोअी सब तैयार करके दे दे तो अुत्तम। कोअी पहल करे तो हम अुसके पीछे चलेंगे, परन्तु अपने विचारसे हमें जो सुखरूप मालूम होता है, अुसे प्राप्त करनेके लिअे श्रम करनेका हममें अुत्साह पैदा नही होता।

नवजीवन, केळवणी अंक, २४–५–१९२५

२
आदर्श आचार्य

विद्यामंदिरोंके बारेमें विविध प्रकारके प्रश्न बार-बार पूछे जाते है। अुनका अुत्तर देना हमेशा आसान नही होता। क्या पढाया जाय और किस प्रकार पढाया जाय, यह मदिरको मिलनेवाले शिक्षको पर निर्भर है। चाहे जितनी अच्छी पुस्तकें हो और चाहे जितनी सर्वांगपूर्ण योजनायें बनाअी गअी हो, परतु यदि अुनके लिअे योग्य शिक्षक न मिलें तो जड पुस्तकें और योजनायें विद्यार्थियोको कोअी लाभ नही पहुंचा सकती।

आचार्य नियुक्त करनेमें कौन-कौनसी बातें देखी जायें, अिस बारेमें मेरे व्यक्तिगत विचार अिस प्रकार है:

१. जो धर्मप्रिय हो। धर्मप्रिय अर्थात् सत्यवादी, कर्तव्य-परायण, प्रामाणिक, सच बोलनेसे न डरनेवाला, बगैर हिम्मतके कोरी बातें न करनेवाला, अुत्साही, मितव्ययी और सयमी।

२. जिसका कौटुम्बिक जीवन शुद्ध, प्रेमपूर्ण तथा अेक-दिलीका हो।

३. जिसे छोटे-छोटे बच्चोंके सहवासमें रुचि हो और आनन्द आता हो।

४. जिसे शिक्षाके सिवा दूसरी प्रवृत्तियोमें भाग लेकर आगे बढ़नेकी आकांक्षा न हो, और जो सौंपे हुअे कामको छोडकर दूसरी बातोमें अपनी शक्ति खर्च करनेवाला न हो।

५. जिसे ज्ञान बढ़ानेका अुत्साह हो। किन्तु वह अुत्साह अैसा अनुचित न हो कि जिससे वह विद्यार्थियोंके प्रति अपना फर्ज अदा न कर सके, और वर्गमें तथा वर्गके लिये तैयारी करनेके समयमें अपने ही शौकके विषयमें मस्त रहे।

६. जो बीडी पीने, अपशब्द बोलने, डाटकर या धमका कर बोलने, और अपना अज्ञान स्वीकार करनेमें शरमाने वगैराकी बुरी आदतोसे मुक्त हो। और,

७ जो निरतर अुद्योगमें लगे रहनेमें, परिश्रम करनेकी शक्ति प्राप्त करनेमें और मेहनत पर ही गुजर करनेमें अपना गौरव मानता हो।

जिसमें ये गुण होगे, अुसमें जितनी भी योग्यता होगी अुतनीसे मै संतोष मानूगा, और अुसे नि.सकोच कोअी भी विद्यामदिर सौंप दूगा। वह जितना कुछ विद्यार्थियोको सिखा सकेगा अुतना मेरे लिअे काफी होगा। अुसे अपनी शक्तिके अनुसार मै पाठ्यक्रम बनाने दूगा। वह किसी भी तरहका पाठ्यक्रम न बनाकर विद्यार्थियोंमें केवल श्रमके लिअे आदरभाव पैदा करे और ममतालु माकी तरह अुन पर प्रेम बरसाये तथा अुनका प्रेम सपादन करे, तो अुतनेसे भी मै सतोष मानूगा।

अिसमें मैंने अुसकी शिक्षणकी योग्यता नही बतलाअी है। किन्तु मैं चाहूगा कि अुसमें देशकी वर्तमान स्थिति, आजका युगधर्म समझनेकी शक्ति हो, और स्वदेशी धर्ममे अुसकी श्रद्धा हो। लेकिन ये गुण न हो तो भी मैं अुसे निबाह लूगा। क्योकि मुझे आशा रहेगी कि यह सब वह किसी दिन समझ जायगा, और अैसी श्रद्धा रहेगी कि यदि समझ गया तो अुस पर अमल भी अवश्य करेगा।

सभव है केवल अितनी बातोंसे सबको सतोष न होगा। मैंने अुसकी अुच्चारण-शुद्धि, लेखन-शुद्धि, अनेक विषयोकी जानकारी तथा शिक्षा-शास्त्रके ज्ञानके बारेमे कुछ भी नही लिखा। अिससे कोअी यह न समझ बैठे कि मैं अिन बातोको अनावश्यक अथवा तुच्छ समझता हू। बात अितनी ही है कि अूपर गिनाअी हुअी बातोंसे अिन्हें विशेष महत्त्व देनेका मेरा मन नही होता। मुझे यह विश्वास तो नहीं है कि पढनेकी तीव्र अिच्छावाले विद्यार्थियोको अैसे शिक्षकसे सतोष होगा ही, परतु जिस शिक्षकमें अूपर बतलाये हुअे गुण न हो अुससे

वहुतसा ज्ञान प्राप्त करने पर भी विद्यार्थियोका किसी भी तरहका विकास होनेकी आशा नही रखी जा सकती। मेरा नम्र मत तो यह है कि अैसे आचार्य द्वारा सचालित विद्यामंदिरके विद्यार्थी ही अपने-आपको, कुटुम्वको और जगत्को सुखी करनेकी शिक्षा पा सकेंगे। दूसरी अनेक विद्याओमें विशारद और पारगत होनेके लिअे महान पण्डितो, कीमती पाठ्य-पुस्तको, खर्चीले पुस्तकालयो, विद्यापीठ कार्यालयो और वड़े-वडे चन्दोकी आवश्यकता है। अैसी किसी विद्यामें प्रवीणता प्राप्त करना अच्छा है। अुसके लिअे देशके पास सावन भी होने चाहिये। परतु जिस विद्यासे पढनेवालो तथा पड़ोसियो और जगत्को सुख और शान्ति मिल सकती है, वह तो दूसरी ही विद्या है। अुस कल्याणकारी विद्यामें विशारद होनेके लिअे अूपर वताया हुआ आचार्य काफी है। शालान्त परीक्षा पास करनेवाला विद्यार्थी भी अिस विद्याका स्नातक हो सकता है, परतु संभव है महाविद्यालयके विद्यार्थी अुसमें असफल रहें। अिसके लिअे पाठ्य-पुस्तको और पुस्तकालयोकी जरूरत कम है। अेक चरित्रवान आचार्य विद्या-मदिरके लिअे संपूर्ण साधन-सपत्ति माना जायगा।

राष्ट्रीय शिक्षाके विषयमें मेरी सलाह लेनेवाले भाअियोंकी समझमें यदि मेरी वात आती हो, तो मैं अितना ही कहूगा कि आप अपने कुमार[1], विनय[2] या महाविद्या-मंदिरो[3] में कल्याण-विद्याकी शाखा पहले खोलें, और साधनोकी अनुकूलताके अनुसार दूसरी विद्याये वादमें दाखिल करें।

जो आचार्य अपने विद्यार्थियोको धर्मप्रिय, प्रेमल, सरल, अेकाग्र, जिज्ञासु, निर्दोप वाणीवाले और परिश्रमी वना सकेंगे, अुनके विद्यार्थियोंको भूखो मरनेका, धर्मभ्रष्ट होनेका, वुद्धिहीन वननेका या परावलवी वननेका डर नही लगता, यह स्पष्ट रूपमें प्रकट हो जाना चाहिये।

नवजीवन, ६–५–१९२३

१, २, ३ गूजरात विद्यापीठकी प्राथमिक, माध्यमिक और अुच्च शिक्षाकी शालाओंके नाम।

३

कुछ हरिजन छात्रालय

कर्नाटक तथा काठियावाड़में अचानक ही कुछ हरिजन छात्रालय देखनेका प्रसग आया। धारवाड़ जिलेके कोरठूर गावमें वस्त्र-स्वावलंबनकी मुख्य प्रवृत्ति है। वहाके हरिजन आश्रममें भी अिसी प्रवृत्तिका वातावरण दिखाओी दिया। अेक ही लडके लंबे-चौड़े झोपडेमें अेक परदा लगाकर अेक ओर पीजनें चलाओी जा रही थीं, दूसरी ओर लडके-लड़किया, युवतिया और बूढियां चरखा चला रही थीं। अेक भागमें सभाकी व्यवस्था की गओी थी। अेक हरिजन विद्यार्थीको अपना बनाया हुआ संवाद अभिनयके साथ सुनानेकी अिच्छा हुअी। वह संवाद अेक प्रसिद्ध लिंगायत भक्तके वचनों और जीवन-प्रसंगोंसे लगभग अुमीकी भाषामें रचा गया था। वह कन्नड़भाषामें था, अिसलिअे मैं अुसे ठीक तरह समझ न सका। परंतु श्री दिवाकरजीने मुझे अुसका भावार्थ समझाया। प्रसंग यह था कि अेक हरिजन शिष्य अुस भक्तको प्रणाम करनेके लिअे आया। भक्तने अुत्तरमें अुसे नमस्कार किया। अिस पर अुस शिष्य तथा दूसरे शिष्योंने प्रश्न किया कि आपके जैसा बड़ा आदमी अपने शिष्यके, और वह भी अेक नीच जातिके शिष्यके, नमस्कारके अुत्तरमें नमस्कार करे, यह कहां तक अुचित माना जायगा? अिस पर अुस भक्तने सबकी समानता तथा नम्रताके विषयमें अेक प्रवचन दिया।

दूसरा अेक आश्रम निपाणी गावमें अेक तरुण हरिजनसेवक चला रहे है। वह भी अेक छोटेसे झोंपड़ेमें है। यदि हम अेक-अेक झोंपड़ेको छोटासा हरिजन छात्रालय कहें तो अनुचित नहीं होगा। वहा ७ से १४ वर्ष तकके बालक अत्यन्त सादगीसे रहते और पढ़ते है। थोड़ा व्यायाम करते है, थोड़ा कातने-पीजनेका काम करते है,

तथा वहुत करके शालामें पढ़नेके लिअे जाते हैं। मुझे आश्रमकी तफसीलमें जानेका समय नहीं मिला। लेकिन श्री ठक्करवापाने वहांकी भेंट-पुस्तिकामें जो वात लिखी, वही छाप मुझ पर भी पड़ी। श्री . . . अुत्साही सेवक हैं, परंतु अुन्हें अनेक-विध प्रवृत्तियोंमें भाग लेने और विशाल क्षेत्रमें काम करनेका जो लोभ है, अुसकी अपेक्षा यदि वे अिस आश्रमके लिअे अधिक परिश्रम करें तो ज्यादा ठीक होगा। आश्रमकी रिपोर्ट मैंने ध्यानपूर्वक पढी। अुसमें जो वात मुझे खटकी वह है संचालककी वार-वार आनेवाली आत्म-प्रशंसा। अुनकी अुम्र अभी तीसके भीतर है। यदि 'कीर्तिकी दीवारें' वे अितनी जल्दी चुनवाने लगेंगे तो अुसमें खतरा है।

निपाणीका श्री वीरशैव केक्कय समाजका वोर्डिंग भी मेरा ध्यान खींचे विना नहीं रहा। वह वोर्डिंग मांग या चमारसे मिलती-जुलती अेक जातिके स्कूल तथा कॉलिजके कुछ विद्यार्थी चलाते हैं। अुसके लिअे चन्दा भी प्रायः वे सव अपनी जातिमें से ही अिकट्ठा करते हैं। कुछ विद्यार्थियोंको सरकारी छात्रवृत्ति मिलती है। वह भी वे अुसी वोर्डिंगको दे देते हैं, और अिस प्रकार लगभग वीस विद्यार्थी अुस वोर्डिंगमें खाते-पीते और पढ़ते हैं। सभी व्यवस्था विद्यार्थी अपने हाथसे ही कर लेते हैं। अिस स्वावलंवी प्रवृत्तिके लिअे वे विद्यार्थी धन्यवादके पात्र हैं।

कर्नाटकके घास-मिट्टीकी झोंपडियोंमें चलनेवाले अिन आश्रमोंको देखनेके वाद जव काठियावाड़में जाते हैं तो चित्रमें अेकदम परिवर्तन दिखाअी पड़ता है। वहांकी तुलनामें काठियावाड़की संस्थाओंके मकान विशाल भवन माने जायंगे। विद्यार्थियोंकी संख्या कर्नाटक, काठियावाड़ या सावरमती कहीं भी तीससे ज्यादा शायद ही हो। परंतु कर्नाटककी सादगी और अुद्योगमयता काठियावाड़में न पाकर मुझे खेद हुआ। लडके, लड़कियां तथा शिक्षक — सभी रसिक दिखाअी देनेके लिअे वहुत चिन्तित दिखाअी दिये। सवर्ण तथा अवर्ण सभी तरुण-

तरुणियोको देखकर मेरे मनमें अेक ही प्रश्न अुठा कि समाजका सच्चा गुरु कौन है? और अुत्तर मिला कि रंगभूमिके नट और नटिया। मेरे बचपनमें जिस प्रकारके नृत्य, रास, कपड़े तथा बालोकी भिन्न भिन्न फैशनें नाटकमें लडके या लड़कीका वेश धारण करनेवाले नटोमें दिखाअी देती थी, वे आज सारे समाजमें फैली हुअी रूढियां बन गअी हैं।

भावनगरके 'ठक्करबापा हरिजन आश्रम' ने मेरे लिअे दो-अढाअी घण्टोका कार्यक्रम रखा था। अुसमें मजीरे और पखावजके साथ गाया गया रास था, दोहे थे, बैठे-बैठे गाये गये लोकगीत थे, और पनिहारिन (बल्कि पनिहारे) का पानीका बेडा सिर पर रख कर किया गया नृत्य था। मेहमानको अपनी विशेषता दिखलानेकी दृष्टिसे यदि यह व्यवस्था की गअी हो, तो मुझे खेदके साथ कहना होगा कि मेरा मन अुससे खुश नही हुआ। अिसका अर्थ यह नही कि वे भजन, रास, दोहे, लोकगीत या नृत्य अच्छी तरह सम्पन्न नही हुअे थे, या अुनमें कला नही थी। पानीके बेड़ेके साथ किया गया नृत्य साधारण नही था। परन्तु जब मैं यह विचार करता हू कि हम लड़के-लडकियोमें किस प्रकारके शौक बढा रहे हैं, हम कैसे छिछले रसोन्माद और बेढंगी भावना-शीलताके पीछे पडे हुअे हैं, तो सौंदर्य और संस्कारिताका भास करानेवाली यह शिक्षा मुझे अप्रसन्न कर देती है। अुसमें भी जब पानीका बेडा सिर पर रखकर नाचनेवाले लड़के (अेक सोलह-सत्रह वर्षके युवक) ने 'साहेली, मने रास रम्याना कोड'* या अैसा ही कोअी गीत गाना शुरू किया और अुसके साथ वह स्त्रैण हावभाव बतलाने लगा, तब यह सारी प्रवृत्ति जिस विचारशून्य रीतिसे चल रही है, अुसका मुझे दुःख हुअे बिना नहीं रहा। गुजरात-सौराष्ट्रकी संस्कृतिकी यदि यही विशेष भावना है, तो मेरी नम्र रायमें यह कोअी बहुत बड़ी विशेपता नही है।

---

* हे सखी, मुझे रास खेलनेकी अुत्कट अिच्छा है।

कर्नाटककी अपेक्षा काठियावाड़की हरिजन संस्थाओंमें खादी भी कम दिखाओ दी, और अैसे विद्यार्थी मुश्किलसे दिखाअी दिये जो भली-भांति कातना जानते हों, या जिनके पास सूतका अितना संग्रह हो जिसे बुनवाया जा सके।

काठियावाड़में अेक प्रकारकी जागृति मुझे विशेष प्रमाणमें दिखाअी दी। डॉ० आम्बेडकरने हरिजनोंके धर्म-परिवर्तनके सम्बन्धमें जो वक्तव्य प्रकाशित किया है, अुस पर छोटी तथा बड़ी अुम्रवाले हरिजनोंने मुझे हर जगह प्रश्न पूछे। हरिजनोंको अस्पृश्यता कितनी चुभने लगी है और अुसका अन्त करनेके लिअे वे कितने अधीर हो गये हैं, यह अुनके प्रश्नोंसे तुरन्त मालूम हो सकता है। अुनका कहना था कि अस्पृश्यता कम हुअी है और अुसे मिटानेके लिअे गांधीजीने अपार श्रम किया है, यह मानते हुअे भी यह नहीं कहा जा सकता कि कितने समयमें अुसका पूरी तरह नाश हो जायगा। अिसलिअे वे पूछते हैं कि हम अिस अपमानित स्थितिमें कब तक रहें। अुन्हें मैंने धीरज रखनेके लिअे समझाया है, फिर भी प्रश्न पूछनेवाले भाअियोंके प्रति सहानुभूति पैदा हुअे बिना नहीं रहती। मैं यदि हरिजन पैदा हुआ होता, तो मैं भी अितना ही अधीर हो जाता।

हरिजनबन्धु, १५-१२-१९३५

४

बालकोंके नृत्य और नाटक

कराचीमें हाल ही जो गुजराती साहित्य सम्मेलन हुआ, अुसके निमित्तसे हमें दो रात बालकोंके नृत्य और नाटक देखनेका अवसर मिला। शृंगार और हावभावकी सादगीकी मर्यादाके साथ यदि बालक अिस प्रकारके नाटक, संगीत, रास आदि दिखायें, तो अुसमे मैं दोष नही मानता। अिसलिअे जब कभी सुविधा होती है, मैं अैसे समारंभोमे शरीक हो जाता हूं। अिन समारंभोमें शरीक होनेका अेक अुद्देश्य यह भी होता है कि अुससे बालकोकी पढ़ाअी किस प्रकार चल रही है अिसका तथा बालको, शिक्षकों और प्रेक्षकोके मानसका अवलोकन करनेका मौका मिलता है। अिसीके साथ निर्दोष मनोरंजनका लालच भी रहता है।

पहली रातको केवल बालिकाओंके ही प्रयोग थे। अुनमे नृत्य, संगीत, अभिनय, रंगभूमिकी सजावट और वस्त्रोंके शृंगार, अिन सबमें प्रेक्षकोको मोहित करनेवाली कला (युक्ति) की भरमार थी। अुन प्रयोगोको देखकर प्रेक्षक बाग-बाग हो गये थे। श्री मुनशीके हाथ सात बालिकाओको जो पदक दिलवाये गये, अुन परसे प्रेक्षकोंके आनन्दका माप निकाला जा सकता है। गुजरातके प्रख्यात कला-मर्मज्ञ यदि अुसकी कद्र करनेके लिअे वहा अुपस्थित न होते, तो भी मुझे विश्वास है कि सामान्य प्रेक्षक भी अुन प्रयोगोकी प्रशंसा किये बिना न रहते।

दूसरे दिन शारदा-मन्दिरके बालक-बालिकाओने नाट्य-प्रयोगोका अभिनय किया। ये प्रयोग मन्दिरकी ओरसे कराचीमें तीसरी या चौथी बार किये जा रहे थे। अुनमें काम करनेवाले अेक बालकने अपना काम बहुत ही सुन्दर ढंगसे किया था। अिससे पहले भी कराचीकी जनता अुस विद्यार्थीको पाच-छह पदक दे चुकी थी, और छठा या सातवा पदक अुस रातको काकासाहबके हाथसे दिया गया। अिस बालकको जो प्रशंसा मिली,

वह सर्वथा अुचित थी। लेकिन छोटी अुम्रमें बालकोंकी किस हद तक सार्वजनिक प्रशंसा की जानी चाहिये, यह अेक अलग प्रश्न है। अिस प्रश्न पर शिक्षा-शास्त्रियोंको विचार करना है। काकासाहबने पदक देते समय अुस बालककी प्रशंसा भी की और अपने कलामय ढंगसे अुस बालकके शिक्षकोंको यह सलाह भी दी कि अुसके हितकी ओर दुर्लक्ष न किया जाय।

अिस प्रकार वे नाट्य-नृत्यके शिक्षणके सफल प्रयोग कहे जा सकते हैं। केवल कराचीके समाजने ही नहीं, परन्तु सारे गुजरात और महागुजरातके साहित्यकारों, कलाकारों, गायकों, विवेचकों और चिन्तकोंने भी अुनकी परीक्षा करके प्रमाणपत्र दिये हैं।

फिर भी मुझे संकोचके साथ यह स्वीकार करना पड़ता है कि जिस समय सारी नाटकशाला रसानन्दमें मग्न दिखाओी देती थी, अुस समय मेरे मन पर कुछ ग्लानिकी छाया फैल रही थी। अैसी ही भावना जब मैंने श्री नानाभाओी भट्टमें भी देखी, तब मेरा यह खयाल दूर हुआ कि सारे रसिकोंके बीच में ही अकेला रस-मूढ़ हूं। अिस विचारसे मुझे थोड़ा आश्वासन मिला कि मेरे साथ अेक अैसे बड़े भागीदार हैं, जो शिक्षा-शास्त्रीके नाते प्राप्त की हुअी अपनी साखको खो सकते हैं।

अिनसे कराचीकी जनता यह न समझे कि अुसके मधुर अतिथि-सत्कारका आनन्द लेनेके बाद घर जाकर मैं अुसकी निन्दा करना चाहता हूं। सारे गुजरात — या लगभग सारी दुनियाके बड़े शहरोंमें — जिस प्रकारका शिक्षण आज चल रहा है, कराचीने अुसीकी झांकी सुन्दर ढंगसे कराअी। बम्बअी, अहमदाबाद, भावनगर और बर्धामें भी नृत्यों और नाटकोंके अैसे प्रदर्शन किये जाते हैं। साधनोंके मुताबिक तड़क-भड़क कम-ज्यादा भले हो, किन्तु वृत्ति या दृष्टिमें फर्क नहीं होता। अर्थात् यह आजके जमानेकी अेक फैशन ही हो गअी है। अिसलिअे मेरी टीका कराची पर नहीं, हमारी आजकी फैशन और मनोदशा पर है।

हम अपनी अुगती हुअी पीढीको किस दिशामें मोड़ना चाहते हैं, अिस पर विचार करनेके लिअे मैं शिक्षकों, पालकों और पुरस्कार देकर बालकोंकी कद्र करनेवालोंसे नम्र विनती करता हूं। मेरा यह नम्र मत है कि जिन बालक-बालिकाओंको अुनके अभिनयके लिअे पारितोषिक दिये गये और जिनकी कच्ची अुम्रमें अत्यंत प्रशंसा और प्रसिद्धि की गअी, अुनके हितका हमने पूरा खयाल नहीं किया। यदि माता-पिता, शिक्षकों और दर्शकोंकी यह अिच्छा हो कि वे बालक और भी सुन्दर नृत्य और नाटक बताते रहें और अुत्तम नट-नटी बनें, तब तो यह बात समझी जा सकती है। परन्तु मैं मानता हूं कि पदक पानेवाले बालक नट-नटीका जीवन बितावें, अैसा शायद ही कोअी पालक और शिक्षक चाहते होंगे। अधिकतर पालकों और शिक्षकोंकी वृत्ति तो यही होगी कि ये अभिनय बालकोंके जीवनका बाहरी अंग ही रहें, वे वर्षमें दो-चार बार अैसे दृश्य बतलाकर शान्त हो जाय और अुन्हें अिनका चसका न लग जाय।

नाटक, नृत्य, संगीत, चित्रकला आदि ललित कलायें दो रूपोंमें विकसित की जाती है अेक अपने सन्तोषके लिअे; और दूसरे, धन्धेके लिअे। धन्धेके लिअे अिन कलाओंका विकास करनेवालोंकी पद्धति और अुसका मापदण्ड निर्धारण करनेमें आश्रयदाताओंकी रुचिका और अपनी कलाको मोहक बनानेका खयाल रखा जाता है। अुसमें अुत्तेजक हावभाव, शृंगार, शोभा, आदिके साथ ही कलाको मिला दिया जाता है। बहुत बार कला गौण होती है और कृत्रिम शोभा तथा मद पैदा करनेवाली सामग्री तथा चेष्टायें ही मुख्य होती हैं। अुनके साथ यदि नरसिंह महेता, तुकाराम जैसोंके जीवनचित्र बनाये जाते हैं, तो केवल अिसीलिअे कि भले आदमी भी अुनकी ओर आकर्षित हों और अुनका विरोध कम हो। जो प्रेक्षकोंकी भोग-वृत्तियोंका पोषण करना चाहता है, अुसके अपने जीवनमें तो अुनका अतिरेक हो ही जाता है। अिसका नतीजा यह होता है कि बेचारे कलाकारोंका

जीवन चरित्रकी दृष्टिसे अत्यन्त गिर जाता है। अुन्हे पेट भरनेके लिअे लोगोकी हीन रुचियोको बढाना और अुनका पोषण करना पडता है और खुदको भी अुनका शिकार बनना पड़ता है।

शालाओमें अुत्सवोंके समय दिखाये जानेवाले नाटको और नृत्योका शिक्षण बन्धेके लिअे नही दिया जाता। अिसलिअे सिनेमा, रंगभूमि, नृत्यशाला आदिके योजक शालाके गुरुजन न होने चाहिये। अर्थात् शालाके नाट्य-समारंभोमें अुनके अनुकरणका विचार भी नही होना चाहिये, तब फिर मोह तो रखा ही कैसे जा सकता है? अिसके विपरीत, संभव हो तो शालाके कला-शिक्षकोका आदर्श यह सिद्ध कर दिखानेका होना चाहिये कि सादे-से-सादे साधनो और अत्यन्त शिष्ट और संयमपूर्ण अभिनयसे भी कला पूर्ण रूपमें विकसित की जा सकती है और अुसका पूरा आनन्द लिया जा सकता है। और अैसा करके अुन्हे राजस वृत्तिके कलाकारो और प्रेक्षकोको शुद्ध रुचिका स्वाद चखाना चाहिये। यह तो मैं आनन्दपूर्वक स्वीकार करता हूं कि अुस छह-सात पदक पानेवाले विद्यार्थीका अभिनय अिसी प्रकारका था। अुसकी कलाको विकसित करनेके लिअे रंग-बिरंगे प्रकाशो, भड़कीली पोशाक, सुन्दर परदे और दूसरी साधन-सामग्रीकी अपेक्षा न थी। यदि ये चीजें जोड दी जातीं, तो मेरी दृष्टिसे वह भद्दा लगता। परन्तु अुस विद्यार्थीका अभिनय तो सारे अभिनयोमें अपवाद ही था। साधारणतः मेरा यह अनुभव है कि हमारे तरुणो और बालकोने वेश-भूषा और नृत्य-नाट्य आदिमें रंगभूमिके दिग्दर्शकों और नटोको ही मानो अपना गुरु मान रखा है।

अेक पक्षका कहना तो यह है कि विद्यार्थियोंको पारितोषिक देनेकी प्रथा बन्द हो जानी चाहिये। किन्तु यदि हम पारितोषिक देनेकी प्रथाको छोड न सकते हो तो अुसमें विवेक तो रखना ही चाहिये। पारितोषिक तीन शुभ हेतुओंसे दिये जा सकते हैं: पानेवालेको आर्थिक लाभ पहुंचाना, अुसके प्रयत्नको प्रोत्साहन देना, और न पाने

वालेमें सद्-अीर्षा पैदा करना। तीनोंके लिअे योग्य अवसर हो सकते हैं। अैसे प्रसंगों पर दिये हुअे पारितोषिक क्षम्य माने जायंगे। गरीब मनुष्यको आर्थिक लाभ पहुंचानेकी आवश्यकता हो सकती है। जिस प्रकार गरीब और होशियार विद्यार्थीके लिअे पारितोषिक या छात्र-वृत्तिकी योजना हो सकती है। कभी-कभी शक्तिशाली किन्तु मन्द पुरुषार्थीके लिअे भी पारितोषिकका प्रोत्साहन अुपयोगी हो सकता है। जो श्रम सभी कर सकते हों, जो सबसे करवाना भी अुचित हो, लेकिन पुरानी रूढियोंके कारण न किया जाता हो, अुसके लिअे पारितोषिक देकर दूसरोंमें अुत्साह पैदा करनेकी आवश्यकता होती है। मैं जिस वातकी कल्पना कर सकता हूं कि शिक्षा तथा अुद्योगोंके प्रति रुचि वढानेके लिअे अैसा करना पड़ सकता है। लेकिन खुशहाल घरोंके विद्यार्थियोंको नाटक, नृत्य जैसे अुत्साहसे सीखे जानेवाले विषयोंके लिअे पारितोषिक देनेकी जरूरत नहीं होती। अुसमें अच्छा काम करनेवालेकी कद्रमें प्रशंसाके दो शब्द कहना ही काफी समझना चाहिये। प्रशंसामें भी अितना संयम रखना चाहिये कि विद्यार्थीका दिमाग फूल न जाय।

आखिरमें, नाटक, नृत्य, संगीत आदि सभी भोग-वृत्तिसे सम्बन्ध रखनेवाली कलाओंके वारेमें हमें यह न भूलना चाहिये कि राष्ट्रका भविष्य संयमी प्रजाओंके हाथमें होता है। अिसलिअे हमारी कलाओंको विकसित करनेका तरीका संयम-वृत्तिका पोषण करनेवाला ही होना चाहिये। अेक भोग दूसरी भोग-वृत्तियोंको अुत्तेजित करता है। अिस-लिअे नाटककी वेश-भूषाकी अैसी योजना न करनी चाहिये जिससे वालक छैल-छवीला वन जाय।

जिनका यह खयाल हो कि अितनी मर्यादाओंमें रहकर कलाका विकास करना कलाको कुंठित कर देने जैसा है, वे मेरी अल्पमतिके अनुसार कलाको शायद ही समझते हैं।

हरिजनबन्धु, १६-१-१९३८

५

अितिहासकी शिक्षामें यथार्थताकी मात्रा

अिस विषय पर पिछले दो अंकोमें चर्चा हुअी है। श्री कालिदासभाअीने प्रश्न अुठाया है कि अितिहास पढाते समय राष्ट्र-भावना और नीति-भावनाके बीच भिन्न भिन्न दृष्टियोंसे विरोध दिखाअी दे तब क्या किया जाय? अिसके अुत्तरमें अेक भाअीने अकारण ही 'साशक' नामसे अपना परिचय देकर पाठकको चौंधिया देनेवाली शब्दाडम्बरपूर्ण और स्वदेशाभिमानी शैलीमें अुस आदतका निषेध किया है, जिसके कारण हम अेक ही मुख्य साध्यसे चिपटे रहनेके बजाय अुनकी दृष्टिसे नीति, मानव-प्रेम आदिके अलग-अलग अप्रस्तुत मुद्दोंको अुठाकर परेशान होते हैं।

अितिहासकी शिक्षाके बारेमें मेरे खयाल कुछ अलग हैं। अुसकी मैं आज चर्चा नहीं करूंगा। परन्तु मैं समझता हूं कि अिन दोनों मित्रोंने जो प्रश्न अुठाया है, अुस पर यदि कोअी विचार किया जाय तो वह आसानीसे हल किया जा सकता है।

जीवनमें अैसे बहुतेरे प्रसंग आते हैं जब हमें धर्म और स्वार्थके बीच चुनाव करना होता है; अितना ही नहीं, दो अुदात्त भावनाओं या कर्तव्योंके बीच विरोध जैसा दिखाअी देता है।

जैसे-जैसे हम धर्माधर्मकी बारीकीमें अुतरते हैं, वैसे-वैसे 'किं कर्म किमकर्म' के प्रश्न बार-बार अुठते रहते हैं; और किसी निश्चय पर पहुंचनेका स्पष्ट मापदण्ड न मिलने पर निर्णय करना कठिन हो जाता है। अिसका अेक निर्णय, जैसा श्री साशकने कहा है, यह है कि अनेक मुद्दे खड़े ही न किये जायं; अेक साध्यसे चिपटे रहे, क्रिया-रीतिके बारेमें निकम्मी खींचतान न करे। बेशक, जो अिस तरह 'येन केन प्रकारेण कार्यं साधयामि' के निर्णय पर अटल रह सकते हैं, अुनके

लिअे यह रास्ता स्पष्ट हो जाता है, किन्तु जिन्हे धर्माधर्मका विचार खाजकी तरह चित्तमें खुजली पैदा करता है, वे अिस प्रश्नको अुठाये विना कैसे रह सकते हैं? अिस प्रश्नके अुठ जानेके वाद यह कहना निरर्थक है कि 'अैसा परेशान करनेवाला प्रश्न अुठाया ही क्यों गया?'

मतलव यह कि जव प्रश्न अुठ ही गया है, तो अुसका समाधान धर्मयुक्त मार्गसे मिलने पर ही अैसे (भले अुसे भावुक कहे) चित्तको सन्तोष हो सकता है।

अिस सम्बन्धमें मेरा खयाल है कि यदि अेक वातका दृढ निश्चय हो जाय तो धर्माधर्मका निर्णय करनेका मार्ग प्राय: स्पष्ट हो जाता है। मनुष्यता सवसे पहला धर्म है। मनुष्यताका हनन करके न मैं स्वदेश-सेवा करूंगा, न माता-पिताकी सेवा करूंगा, न भारतीयपन वतलाअूंगा, और न अपना हिन्दुत्व ही वताअूंगा। मनुष्यता किस वातमें है, अिस अुदात्त दृष्टिसे विचार न करके जव हम किसी नीचे दृष्टिविन्दुसे विचार करते हैं तव दो विरोधी धर्म या भावनायें पैदा होने जैसा लगता है। अितना तो किसी विशेष परिस्थितिमें हमारा धर्म क्या है, यह निर्णय करनेके विषयमें।

दूसरेके वारेमें निर्णय करनेके लिअे अिस पर दो तरहसे विचार करना पडेगा. मनुष्यताकी दृष्टिसे अुसका कर्तव्य कैसा था? और, अुसका अुद्देश्य अेक वार स्वीकार कर लेने पर अुसके कृत्योको किस दृष्टिसे देखना चाहिये?

अिस सयुक्त दृष्टिसे श्री कालिदासभाअीके अुद्धृत किये हुअे तीनो दृष्टान्तोका विचार करें।

क्लाअिवने अैसे छल-प्रपंच किये, जो मनुष्यको शोभा नही दे सकते। और यदि हम मानवताकी पूजा करते हो, तो स्वदेशके लिअे भी हम अैसे अनैतिक काम न करेंगे। मैं समझता हू कि शिक्षकका यह अुत्तर अुचित था। परन्तु विद्यार्थी मानवताके दृष्टिविन्दुसे विचार नही करता था। अुसने राज्य-लोभको अुचित वासना माना था। और अैसा मान

कर ही अुसने पूछा था कि 'यदि हम विदेशोंसे व्यापार करें, हमारा राज्य हो और हमारे पीछे सत्ताका बल हो तो हम भी वैसा ही करेंगे न?' अिसलिअे अुसके दृष्टिबिन्दुको ध्यानमें रखकर हम अुसे यों कह सकते हैं कि 'हां, भाअी, यदि राज्य-लोभको हम अेक बार अुचित वासना मान लें, तो क्लाअिव जैसे ही या अुनसे भी ज्यादा दुष्ट कृत्य हमारे हाथसे भी हो सकते हैं। अिसलिअे क्लाअिवको या राज्य-लोभके वश हुअी अंग्रेज प्रजाको दोष देनेकी आवश्यकता नहीं। दोष है राज्य-लोभका। अुनकी दृष्टि मनुष्यता तक नहीं पहुंचती। हमसे हो सके तो हम अपनी दृष्टि मनुष्यता तक पहुचावें।'

अिसीके साथ शिक्षक स्वराज्यकी वासना और राज्य-लोभकी वासनाके बीचका भेद भी विद्यार्थीके सामने स्पष्ट कर सकता है। मेरे घर पर कब्जा रखने और चला गया हो तो अुसे फिरसे पानेका प्रयत्न करना अेक बात है, और अपने घरके अलावा मैं पड़ोसीके घरका भी कब्जा लेनेका प्रयत्न करूं यह दूसरी बात है। राज्य-लोभ — दूसरेके घर पर कब्जा करनेका प्रयत्न करना — जडसे ही मनुष्यताके विरुद्ध है; तब अुसके लिअे जो-जो अुपाय किये जायं अुनमें यदि मनुष्यता का ज्यादासे ज्यादा भंग हो तो कोअी आश्चर्य नहीं। अपने घरका कब्जा लेने या रखनेका प्रयत्न यथार्थमें ही मनुष्यताका विरोधी नहीं है; मनुष्यता (यहां धर्म-नीति) की रक्षा करके भी वह प्रयत्न किया जा सकता है। यदि मेरा मनुष्यताका आग्रह दृढ हो तो मैं मनुष्यताका पालन करके ही वह प्रयत्न करूंगा। यदि वैसा न हो सके तो मैं स्वराज्यका आग्रह भी छोड दूंगा। यदि मेरा मनुष्यताका आग्रह स्वराज्यकी वासनाकी तुलनामें निर्बल हो तो मैं दूसरे अुपाय भी अपनाअूंगा। परन्तु स्वराज्य-लोभ राज्य-लोभसे सदा ही अधिक क्षम्य माना जायगा।

दूसरा प्रश्न है हिन्दू-मुस्लिम अेकताका। श्री साशंकका कहना है कि अितिहासमें अिस अेकताकी विरोधी जो बातें लिखी हुअी है — जैसे

मंदिर तोडनेकी, जजियाकी, या दूसरे जुल्मोकी — अुन्हे दबा दिया जाय। विद्यार्थियोको अुनसे अनभिज्ञ ही रखा जाय। 'यथार्थता' की मूर्ख या अंधी पूजा न की जाय। अिस सम्बन्धमें श्री साशंकने जो दलील दी है, वह अेक दृष्टिसे ठीक है। परन्तु अैसा लगता है कि अुनकी दृष्टि छोटी अुम्रके विद्यार्थियो पर ही है। मार्स्डन या विट्ठलदास पटेलके अितिहासकी आवृत्तियां अिस ढंगसे लिखी जा सकती हैं कि अुनमें धर्मके पुराने झगड़ोका अुल्लेख ही न रहे। किन्तु मार्स्डन या विट्ठलदास पटेलके अितिहाससे अितिहासकी शिक्षा पूरी नही हो जाती। अितिहासके मूलभूत आधारोका और अुनके आधार पर लिखे हुअे बड़े अितिहासोका नाश नही हो सकता। मूलभूत आधारोको विद्यार्थी न खोजें, यह आज्ञा नही निकाली जा सकती। वह तो अब —

"मुखेथी रे मानवी वेण मूक्यु,
फरीथी ते ते न गळाय थूंक्यु." *

की तरह अगोप्य हो गया है। और अिस तरह सत्यको छिपानेका मिथ्या प्रयत्न करना वृथा है। मुझे याद है कि बी० अे० के रसायनशास्त्रके वर्गमें जब पहले दिन मैं गया, तो हमारे अध्यापकने कहा था, 'आपने मैट्रिकमें रसायनशास्त्र पढकर जो कल्पनायें बाधी हो अुन्हें यदि आप भूल न गये हों तो आजसे कृपया भूल जावें।' अुस दिन मुझे बुरा लगा था। मुझे लगा था कि मैट्रिकमें हमारे साथ अितना धोखा क्यो किया गया? भले अेक ही पाठ पढाया गया हो, लेकिन जो पढाया गया वह सच्चा ही क्यो नही पढाया गया?' अिसी तरह बडे अितिहासोका अध्ययन करनेवाले विद्यार्थी श्री साशंकसे कहेगे कि 'हमें हिन्दू-मुसलमानोके झगडो या सूरतकी लूटका ज्ञान न करानेका कारण क्या है?' फिर जैसे आज श्री बसुने अंग्रेजी अितिहासकारो द्वारा छिपाअी हुअी बातोंको चुन-चुनकर प्रकाशमें लाना शुरू किया है, वैसा ही कोअी दूसरा विद्यार्थी क्यो नही

---

* हे मानव, मुहसे वचन निकल गया, सो निकल गया। जो थूक दिया अुसे फिरसे निगला नही जा सकता।

निकल सकता? अिसलिअे जानी हुअी और प्रस्तुत हकीकतोंको छिपानेका प्रयत्न न करके अुन्हें विद्यार्थियोंके सामने रखकर ही कोअी मार्ग निकालना ठीक है।

सत्य यह है कि 'सद्धर्मकी रक्षा करना राजाका कर्तव्य है' अिस सूत्रको हिन्दुओं और मुसलमानोंने तथा दोनों धर्मोंने स्वीकार किया है। किसे सद्धर्म कहा जाय और किसे अधर्म, अिस सम्बन्धमें हर धर्मके अनुयायी अपने ही प्रसिद्ध शास्त्रोंसे अपनेको बंधा हुआ मानते हैं। जैसे अनेक हिन्दू प्रामाणिकतासे यह मानते हैं कि 'अंत्यजको छुआ नहीं जा सकता' मनुस्मृतिके अिस श्लोकको वे ठुकरा नहीं सकते; अुन पर स्वबुद्धिसे या मानवताके खयालसे पैदा होनेवाली दलीलोंका असर नहीं होता; अुसी प्रकार अनेक मुसलमानोंकी अपने माने हुअे कुछ प्रामाणिक ग्रन्थोंके आधार पर अैसी प्रामाणिक मान्यता बन गअी थी — संभव है आज भी हो — कि मूर्तिपूजा अधर्म है, सच्चे अीश्वरका द्रोह है। अिस मान्यताका सीधा परिणाम यह हुआ कि शास्त्रमें श्रद्धा रखनेवाले बादशाहोंने 'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्मसंस्थापनार्थाय' अपना जन्म हुआ मानकर मंदिर तोड़े, हिन्दुओं पर जजिया कर लगाया, और मूर्तिपूजकोंको अनेक तरहके कष्ट दिये। मनुष्य अपनी बुद्धिको मनुष्यता और शास्त्र दोनोंके विचारोंसे और मनुष्यताके विचारोंको बुद्धिसे तेजस्वी बनानेके बदले यदि स्वबुद्धि और मनुष्यताको शास्त्रके चरणोंमें रखकर ही सन्तोष माने, तो अुसका शास्त्राध्ययन तेजस्वी और सदैव वर्धमान (ever growing) न होगा, अुलटे अुसे मनुष्यताके विरुद्ध कर्मोंमें लगावेगा। अिनमें दोष जातियोंकी अबुद्धि—जड़ताका ही माना जायगा। और जब तक यह अबुद्धि या जड़ता कायम रहेगी, तब तक यदि अैसा ही होता रहे तो कोअी आश्चर्य नहीं।

अिसलिअे हिन्दू-मुस्लिम अेकताके प्रश्नको हल करनेके लिअे मुसलमान बादशाहोंने हिन्दू धर्म और हिन्दुओंके साथ जो व्यवहार किया, अुसे

छिपानेसे क्या होगा? परन्तु अिन घटनाओंका ज्ञान देनेके बाद भी हमें कहना चाहिये कि "मनुष्यतासे भी शास्त्रको बड़ा माननेवाली अबुद्धिका परिणाम देखिये। हिन्दुओंने जब अपने-अपने पथके शास्त्रोंको मानवतासे अधिक महत्त्वका माना, तब शैवोंने वैष्णवों और वैष्णवोंने शैवोंके सिर फोड़े। मुसलमानोंने जब पंथके शास्त्रोंको मानवतासे बड़ा माना, तब शियाओंने सुन्नियोंके और सुन्नियोंने शियाओंके सिर फोड़े, और अभी कुछ ही दिनों पहले अेक नवीन पथके नेताको मार डाला। अीसािअयोंने जब पथके मन्तव्योंको मानवतासे अधिक महत्त्व दिया, तब कैथोलिकोंने प्रोटेस्टेण्टोंको और प्रोटेस्टेण्टोंने कैथोलिकोंको जिन्दा जलाया। यदि ये सब शास्त्रोंकी अपेक्षा मनुष्यताको — जीवधर्म, दयाधर्म, प्रेमधर्मको, मतके आग्रहको नहीं बल्कि अहिंसाके आग्रहको — स्वीकार करते, तो अिन्हें निश्चित रूपसे समझमें आ जाता कि अिस प्रकारका बरताव किया ही नहीं जा सकता। शास्त्रोंकी दृष्टिसे न देखकर यदि आप मनुष्यताकी दृष्टिसे देखना स्वीकार करें, तो आपको तुरन्त ही समझमें आ जायेगा कि अस्पृश्यताके कारण समाजका अेक अंग अैसा है, जो दुःखी है, दरिद्री है, और जिसकी अुन्नतिके सभी मार्ग बन्द हैं। अुन्हें छूनेसे संभव है अुच्च वर्णोंकी मुश्किलें बढ़ जायँ; संभव है अुनके कुछ सुधरे हुअे रीत-रिवाज, शुद्धता आदिका आसानीसे पालन न किया जा सके, लेकिन अिसमें शक नहीं कि अिनसे अछूतोंकी सुविधायें तो बढ़ ही जायगी। और जिस तरह दूसरेका सुख बढ़ानेमें ही मानवता है। अुसी प्रकार मुसलमानोंके शास्त्र भले गोवधको पाप न मानते हों, और हिन्दू शास्त्र दूसरे पशुओंकी अपेक्षा गायको विशेष पवित्र माननेमें भूल करते हों, फिर भी जीवको मारनेकी अपेक्षा अुनकी रक्षा करनेमें किसी भी समय विशेष मानवता है। गायको ही क्यों बचाया जाय, बकरीको क्यों नहीं, यदि यह पूछा जाय तो बकरीको न बचानेमें हमारी मानवताके विकासमें न्यूनता है। परन्तु यदि अुस न्यूनताको यदि हम गोवध करके बढ़ावें तो वह धर्म नहीं है। यदि

मैं सत्य बोलनेको धर्म मानता हूं तो अपने प्राणोंको होम कर भी सत्य बोलनेमें मेरी मनुष्यता है; किन्तु मनुष्यताका धर्म यह नहीं कहता कि मैं दूसरे झूठ बोलनेवालेको दण्ड दूं। अुसी प्रकार यदि मूर्तिपूजामें मुझे अधर्म मालूम होता हो, तो प्राणोंका खतरा अुत्पन्न होने पर भी मैं मूर्तिके चरण नहीं छुअूंगा। परन्तु जिन्हें अिस अधर्मके बारेमें विश्वास नहीं है, वे यदि मूर्तिके चरण छुअें तो अुन्हें दण्ड देनेमें मनुष्यता नहीं है।"

ये और अैसे ही दूसरे झगडोंका अन्त अिन दो मार्गोंसे हो सकता है: या तो हम केवल शास्त्रोंकी अपेक्षा मनुष्यताकी दृष्टिसे विचार करना सीखें; अथवा युरोपकी तरह शास्त्र — धर्माधर्म सब कुछ अेक ओर रखकर हम केवल धन-लाभ या भौतिक सुखप्राप्तिकी दृष्टिसे ही विचार करना सीखें। मनुष्यत्वकी अुन्नति किस प्रकार होगी यह निश्चित करना कठिन नहीं है।

अब हम सूरतकी लूटका विचार करें। मैं जानता हूं कि जिस ढगसे अितिहास पढ़ाया जाता है अुससे सूरतके विद्यार्थियोंके मनमें शिवाजीके प्रति तिरस्कार पैदा होता है। परतु अुसमें निष्कारण ही तिलका ताड़ किया जाता है। सत्य क्या है? शिवाजीको स्वराज्यकी स्थापना करनी थी। अुन दिनोंमें सत्याग्रहका विचार भी पैदा नहीं हुआ था, जिससे अहिंसाके रास्ते स्वराज्यकी स्थापना की जाती। शिवाजीने हिंसाका मार्ग अस्वीकार नहीं किया था। स्वराज्य पैसेके वगैर तो स्थापित हो ही नहीं सकता था। अिसलिअे जैसे वनराजने किया या आजके अनार्किस्टोंको करना पड़ता है, अुसी तरह शिवाजीने भी लुटेरोंकी पद्धतिसे अपने प्रयत्नका आरभ किया। शिवाजीके सामने गुजराती, मराठी, हिन्दू या मुसलमानका प्रश्न नहीं था, जैसे अनार्किस्टोंके सामने बंगाली या मारवाडीका प्रश्न नहीं होता। जहां तक हो सके पहले सरकारी — यानी शिवाजीके समयमें बीजापुर आदि दक्षिणके राज्यों या मुगल राज्योंका — खजाना लूटा जाय। अुतनेसे काम न चले तो धनवान

शहरोंको लूटा जाय — अर्थात् स्वराज्यके नहीं, बल्कि मुसलमानोंके। अुस समय सूरत बहुत ही समृद्ध शहर था। वह मुसलमानोंका था। अिसलिअे शिवाजीने अुसे लूटा, जैसे अनार्किस्ट मालदार बंगालियोंको कलकत्तेमें लूटते हैं। शिवाजीने गुजरातियोंको या गुजरातियोंके सूरतको लूटा ही न था। अुन्होंने तो मुगलोंके सूरत और मुगल प्रजाको लूटा था। सूरत गुजरातमें था, यह तो अेक संयोग ही माना जायगा। वह कोंकणमें होता तो भी शिवाजी अुसे लूटते। शिवाजीको गुजरातियोंसे दुश्मनी नहीं थी, सूरतसे दुश्मनी नहीं थी; अुनकी तो मुगलोंसे दुश्मनी थी, और अुन्हें पैसेकी जरूरत थी। सूरत मुगल राज्यमें था और अुसमें पैसा था। अिसलिअे सूरत अुन्हें लूटने योग्य मालूम हुआ। अुसमें गुजराती लूटे गये, यह तो अेक अैसी अड़चन थी जो टाली नहीं जा सकती थी। अुसे यदि गुजराती लोग दुश्मनी समझें, तो यह अुनकी भूल ही होगी। यदि बोरसदके बाबरा डाकूमें वनराज या शिवाजी जैसी स्वराज्यकी महत्त्वाकांक्षा होती, नीतिमत्ता होती और अुसका पासा सीधा पड़कर वह स्वराज्यकी स्थापना कर देता, तो क्या खुद बोरसदके लोग ही अभिमानके साथ 'वीर बाबरा' कहकर अुसका नाम नहीं लेते? हिंसाकी राहसे स्वराज्य स्थापित करनेवालोंको आरंभमें लूट-पाट करनी ही पड़ती है, अैसा मानकर बोरसदके लोग भी अपनी लूटको अुदारतासे भूल जाते और अुनका यशोगान करते।

अिस प्रकार सभी हकीकतें बताते हुअे भी मेरी समझमें तीनों किस्सोंको योग्य दृष्टिसे विद्यार्थियोंके सामने पेश किया जा सकता है।

धर्माधर्मका अपने लिअे निर्णय करनेमें मनुष्यताको ही महत्त्व दें, और दूसरोंके हो चुके व्यवहारके बारेमें अुनके दृष्टिबिन्दुको समझकर विचार करनेका प्रयत्न करें, तो मुझे लगता है कि अैसी कठिनाअियां बहुत-कुछ हल हो सकती हैं।

नवजीवन, केळवणी अंक, २७–९–१९२५

६

'पगदंडी' की प्रस्तावना

श्री नानाभाऔी भट्टकी पुस्तककी प्रस्तावना मैं अपनी धृष्टता प्रकट करनेके लिअे नहीं लिख रहा हू, बल्कि अिसलिअे लिख रहा हूं कि मेरे मनमें अुनके प्रति जो आदर है वह प्रकट हो और अुन्होंने जो अिच्छा बताअी है अुसे मान कर मुझे आत्म-सन्तोषका अनुभव हो।

श्री नानाभाऔीने जब शिक्षाके क्षेत्रमें प्रवेश किया, तब मैं अंग्रेजीकी चौथी या पाचवीं कक्षामें पढ़ता हूंगा। अुन्होंने तो पढते-पढते ही पढाना शुरू कर दिया था और डिग्री मिलनेके पहले ही अपने जीवनका कार्य निश्चित करके अुसमें प्रविष्ट हो गये थे। आज तक वे अुसी कार्यमें लगे हुअे हैं। अुनके परंपरागत संस्कार भी अुस कार्यके अनुकूल थे और योग्य परिस्थितिया भी अुनके लिअे तैयार होती गअी। वह कार्य अुनकी प्रकृतिके अनुरूप — स्वभाव-नियत था। अुसीको अुन्होंने बुद्धिसे हेतुपूर्वक वरण करके विशेष रूपमें अपनाया, और मन, वाणी तथा कर्म तीनोंको अुसमें लगाकर वर्षो तक अुसीका अेकाग्र चिन्तन किया, अुसके लिअे आवश्यक सद्‌गुण और कुशलतायें प्राप्त की, अुस कार्यको चमकाया, अुस क्षेत्रमें महत्ता प्राप्त की, अपना विकास किया, और स्वकर्माचरण द्वारा मनुष्य किस प्रकार श्रेय-साधना कर सकता है अिसका अुदाहरण दुनियाके सामने पेश किया। साथ ही वे गुजरातमें शिक्षाके नवयुगके प्रवर्तक बने।

जो मनुष्य जीवनभर अेक ही कार्यमें लगा रहेगा, वह अुस क्षेत्रका अनुभवी तो बन ही जायगा। परंतु सभी अनुभवी जागरूक रहकर — स्मृतिपूर्वक अनुभव नहीं लेते। अधिकतर लोग तो अुस कार्यको अपनी सहज आदत बनाकर अुसे अपने चित्तके तंद्रिल भागका अंग बना देते हैं।

अपनी अुम्रके आखिरी हिस्सेमें यदि वे अपने अनुभवोका कोअी भाग किसीसे कहते हैं, तो वह अधिकतर किस्सो और चुटकलोंके रूपमें होता है या अपनी सफलता-विफलताके परिणामस्वरूप अुस कार्यके संबंधमें अुनका आशावादी या निराशावादी अंतिम सार ही होता है। वे अपने पीछे आनेवालोको अुपयोगी हो सकें अैसे दिशासूचक चिह्न बतानेका काम नही करते। यह काम तो जो जागरूक रहकर—स्मृतिपूर्वक काम करता हो वही कर सकता है।

अिस पुस्तकमें न तो श्री नानाभाअीके शिक्षकके रूपमें लगभग चालीस-पैंतालीस वर्षके जीवनके मनोरंजक किस्से या चुटकले हैं और न अुन्हें जीवनमें मिली हुअी सफलता-विफलताओंका अन्तिम सारमात्र है। परन्तु 'शिक्षा' को जीवन-विज्ञानका अेक विशाल प्रदेश समझकर, अुस प्रदेशके अेक बुद्धिमान और सावधान किसानकी तरह हर क्षेत्रमें कहां किस प्रकारकी जमीन है—कहा मिट्टी है, कहा कंकर हैं, कहा पत्थर हैं, कहा घास है, कहां गोखरू हैं, कहा कांटे हैं, कहा अूंचाअी है, कहा नीचाअी है, कहां सख्त जमीन है, कहा दलदल है, कौनसा हिस्सा किन किन चिह्नोसे पहचाना जाता है—आदि बातोंकी छानबीन करते-करते जो टिप्पणिया लिखते गये हैं, अुन्हीको यहा प्रकाशित किया गया है। जो भी मनुष्य शिक्षाके प्रदेशमें काम करेगा, फिर वह अुसे अुदर-निर्वाहके धंधेके रूपमें अपनाये, या वह धन्धा करनेवालोको काम देकर अुनसे काम लेनेवाला मालिक (डिरेक्टर) बने, या अन्वेषणकर्ता वैज्ञानिक बने, अुसे अिस प्रदेशके किसी-न-किसी क्षेत्रका सामना करना ही होगा। अैसे सब लोगोंके लिअे ये टिप्पणिया अभी कअी वर्षो तक अुपयोगी सिद्ध होंगी। ये टिप्पणियां चालीससे भी अधिक वर्षोमें जो अनुभव हुआ है अुस पर आजकी दृष्टिसे विचार करके नही लिखी गअी हैं। परन्तु जैसे अेक शोधक अपनी प्रयोगशालामें रोज जो प्रयोग करता है या अपनी निगरानीमें होते देखता है अुनकी डायरी रखता है, तथा अुन प्रयोगोंके संबंधमें अुस दिनके अपने विचार लिखता है

या जिनमें अनुभवसे सच्ची मालूम हुअी और बादमें गलत मालूम हुअी अपनी आजमािअशें और विचारमाला भी रहती है, अुसी प्रकारकी ये टिप्पणियां हैं।

बादमें गलत साबित होनेवाली टिप्पणियां भी दो प्रकारकी होती हैं। जिन्हें हम जीवनकी भूलें कहते हैं, अुनमें कुछ तो अैसी होती हैं जो बादमें विचार करने पर भले भूल मालूम हों, परन्तु यह दिखानेवाली होती हैं कि जिन परिस्थितियोंमें वे कार्य हुअे थे अुनमें वैसा किये बिना चल ही नहीं सकता था, अथवा जीवनके अुनने ही अनुभव और विकासकी स्थितिमें वैसा ही होना संभव था। अैसी भूलें अेक रीतिमें भूलें नहीं, बल्कि विकासकी भूमिका ही होती हैं। अुस भूमिकामें वह कदम आगेकी दृष्टिसे सच्चा न होने पर भी अनिवार्य जैसा होता है। दूसरा प्रकार सच्ची भूलोंका होता है। पाठक अुन्हें भूलके रूपमें समझ ही लेता है। लेकिन-चूंकि वैसी भूलें बार-बार होनेकी संभावना रहती है, अिसलिअे अुनकी टिप्पणियां दूसरोंके लिअे संकेतरूप बनती हैं।

अिस प्रकार शिक्षाके प्रदेशमें श्री नानाभाअी जिन-जिन पगडण्डियोंसे होकर गुजरे हैं अुन पर तथा श्री नानाभाअी, अुनके साथियों तथा समकालीन लोगोंके द्वारा बनी हुअी पगडण्डियों पर श्री नानाभाअीने जो चिह्न देखे हैं, अुनकी अिस पुस्तकमें नोंध है। यों अिस पुस्तकको जो 'केळवणीनी पगदण्डी' (शिक्षाकी पगडण्डी) नाम दिया गया है वह सार्थक ही है।

समाप्त करनेके पहले श्री नानाभाअीकी अेक साहित्य-सेवाका भी अुल्लेख कर दूं। हमारे देशके विद्वानोंमें यह फैशन हो गअी है कि किसी प्रचलित शब्दके यथार्थ होने पर भी अुसे अिसलिअे अशिष्ट बताया जाता है कि वह रूढ़ हो गया है और अुसकी जगह कोअी नया शब्द गढ़ा जाता है। अेक समय बालकोंको पढ़ानेवालेके लिअे 'पण्डित' (गुजरातीमें 'पंड्या', मराठीमें 'पंत') नाम आदरसूचक माना जाता था।

फिर जब पंडित, पंड्या, पन्त शब्दोंके लिअे विशेष आदरकी भावना पैदा करनेकी आवश्यकता हुअी, तो अुनमें 'जी' मिलाया गया। अिसके बाद मुसलमान कालमें देशी विद्या पढानेवालोंके लिअे अुपयोग किये जानेवाले अिन देशी शब्दोंकी अपेक्षा अरबी-फारसीके पढ़ानेवालोंके लिअे बरते जानेवाले 'मेहता' तथा 'मुनशी' शब्द अधिक आदरसूचक माने गये। अिस प्रकार पण्डित और पण्डया 'मेहता' या 'मुनशी' बनने लगे। आगे चलकर अुन्हें भी विशेष आधारकी जरूरत पड़ने पर 'जी' का सहारा दिया गया। यों 'मेहताजी' और 'मुनीजी' सामान्य नाम बन गये। अिसके बाद आया अंग्रेजोंका जमाना। अुनकी शालाओंमें तो 'मास्टर' ही हो सकते हैं! अिसलिअे मेहताजी कहलानेकी अपेक्षा मास्टर कहलानेमें विशेष अिज्जत मालूम हुअी। अितने पर भी कठिनाअी दूर न हुअी। क्योंकि मास्टर तो वही कहा जायगा जो प्राथमिक या माध्यमिक शिक्षा देता है। कॉलिजमें पढानेवालेको 'मास्टर' कहना सभ्यता नहीं मानी जा सकती। वहांका पढानेवाला तो 'प्रोफेसर' कहा जायगा।

फिर आया राष्ट्रीय जागृतिका जमाना। अिसलिअे हम अंग्रेजी शब्दोंको छोड़कर संस्कृत व फारसीकी ओर मुड़े। मास्टर-टीचरका अनुवाद हुआ 'शिक्षक', 'प्रोफेसर' का 'अध्यापक' (महाराष्ट्रमें आचार्य) और प्रिन्सिपालका 'आचार्य' (महाराष्ट्रमें मुख्य आचार्य)। 'मेहताजी', 'पंतजी' तुच्छता बतलानेके लिअे अुपयोग किये जानेवाले शब्द बन गये। जमाना और आगे बढा। देशमें राष्ट्रीय शिक्षा फैली। अेक लकीरको मिटाये बगैर छोटी करना हो तो अुसके पास दूसरी बडी लकीर खींचनी चाहिये, अिस न्यायने अध्यापक शब्दने शिक्षक शब्दमें छोटापन ला दिया। शिक्षक शब्द छोड़कर सभीको अध्यापक (या आचार्य) कहनेका युग आरंभ हुआ। परंतु प्रोफेसरोंकी अिस प्रकार अवगणना कैसे हो सकती थी? अुन्होंने नअी युक्ति निकाली। वे अध्यापक न रहकर 'प्राध्यापक' या 'प्राचार्य' बन गये!

गुजरातने कअी वर्षो तक जिन्हें शामळदास कॉलेजके प्रोफेसर 'नृसिंहप्रसाद कालिदास भट्ट' के नामसे और बादमें दक्षिणामूर्ति विद्यार्थी-भवनके आचार्य 'नृसिंहप्रसाद अुर्फ नानाभाअी भट्ट' के नामसे पहचाना है, अुन्होंने आंबलाकी ग्रामदक्षिणामूर्ति शालाके 'मेहताजी नानाभाअी भट्ट' के नामसे अपना परिचय देकर शब्दोंके अितिहासमें 'शाला' तथा 'मेहताजी' जैसे शब्दोको पुन. प्रतिष्ठित किया है।

जहां तहां अूच-नीचका भेद बतलानेवाली श्रेणिया खडी किये बिना हमें चैन ही नही पडता! अूंच-नीच समझनेके लिअे जब दूसरा कोअी निमित्त हाथ नही लगता, तो हम केवल शब्द बदलकर ही काल्पनिक अूंच-नीचपन खड़ा कर देते है! अुसमे हम साहित्य और शब्दोंका विकास मानते है। किन्तु वास्तवमें हम अितना ही करते हैं कि तत्त्वतः अेक ही काम करनेवाले लोगोमें कम-ज्यादा प्रतिष्ठाके कृत्रिम भेद निर्माण करके अुनमें अीर्ष्याके बीज बोते है। श्री नानाभाअीने अिस रूढ़िको तोडकर समाजकी अेक बड़ी सेवा की है।

'कोडियुं', जून १९४६

शिक्षामें विवेक

तीसरा भाग

प्रश्न-चर्चा

१
विविध प्रश्न

[जो प्रश्न अुत्तरो परसे ही समझमें आ सकते है, अुन्हें अलगसे नही दिया गया है।]

१ जो शिक्षक सदा विद्यार्थी न रहे, वह सफल शिक्षक हो ही नही सकता। अिस बातमें वकील और शिक्षक समान है। अैसा अेक भी विषय नही है, जिसका ज्ञान अुसे अपने धंधेमें अुपयोगी न हो। कानूनमें प्रतिदिन जो फेरबदल होते है, बडी अदालतें जो नये-नये निर्णय देती है, अुनसे वकीलको सदा परिचित रहना पडता है। अुसी तरह शिक्षकको भी सदा ही शोधक रहना चाहिये। जो शिक्षक केवल पाठ्य-पुस्तके पढा देता है, वह तो शिक्षाका यंत्रमात्र है। आजकल अधिकतर अैसा ही यान्त्रिक शिक्षण चलता है। वह शिक्षकोको सरल मालूम होता होगा; विद्यार्थियोको परीक्षा पास करनेमें भी सुविधा-जनक रहता होगा; परंतु अुससे न तो शिक्षककी प्रगति होती है और न विद्यार्थियोकी। पाठ्य-पुस्तकें धीरे-धीरे तो बनेंगी ही। आपका पहला दल है। आप अपने अनुभवसे अुन्हें तैयार करनेमें योग दें। परन्तु पाठ्य-पुस्तकोंके बिना शिक्षाकी गाडी रुक जायगी, अैसी लाचारी न मालूम होनी चाहिये।

२. अेक शिक्षकको अेक साथ अनेक वर्ग चलाने पडे, यह स्थिति अच्छी तो हरगिज नही कही जा सकती। यह पद्धति आर्थिक असुविधाके कारण ही चलती है। विद्यार्थियोकी संख्या कम हो तब भी यह रास्ता अपनाना पडता है। परंतु यह सब हमारी दरिद्रताको प्रकट करता है। अिसमें पद्धतिका शास्त्रीय समर्थन नही है।

परंतु अिन कठिनाअीयोको हल करनेके लिअे मैं बडे विद्यार्थियोंका छोटे विद्यार्थियोंके शिक्षकके रूपमें अुपयोग करना अधिक पसंद

करूंगा। काफी शिक्षक होने पर भी मैं तो कहूंगा कि होशियार बड़े विद्यार्थियोंको कुछ न कुछ शिक्षाका काम सौंपना चाहिये। अिससे संबंधित थोड़ा पाठ्यक्रम भी अुनके वर्गमें रखा जा सकता है। अिससे पढ़ानेवाले विद्यार्थीकी शक्ति बढ़ती है, अुसका अपना ज्ञान पक्का होता है, और बहुत बार यह भी अनुभव होता है कि बालक बड़े शिक्षकके समझानेसे जो नहीं समझता, वह विद्यार्थीसे ज्यादा अच्छी तरह समझ जाता है।

आधे दिनकी शाला (शिफ्ट) की पद्धति भी व्यवस्थाकी असुविधा और समय तथा जगहकी किफायतकी दृष्टिसे ही जारी हुअी है। स्थानीय परिस्थिति जाने बिना अिस पर मैं टीका नहीं कर सकूंगा। परंतु विद्यार्थी-शिक्षककी पद्धतिमें मेरा जरूर विश्वास है।

३. प्र० — हमारे यहां मुसलमान विद्यार्थियोंको दो घण्टे अनिवार्य रूपमें अरबी सीखनी पड़ती है। अुनके लिअे अिस पढ़ाअीके लिअे आवश्यक समय कैसे निकाला जा सकता है?

अु० — अिसका अुत्तर मैं नहीं दे सकता। सरकार और जिनकी मांग पर अरबीका शिक्षण शुरू किया गया है, वे अिस पर विचार करके जो निर्णय करें अुसीके अनुसार चला जाय।

४. अिसमें शक नहीं कि कताअीका आरंभ चरखेसे नहीं, तकलीसे होना चाहिये। शिक्षाशास्त्र और व्यावहारिक सुविधा दोनोंकी दृष्टिसे बालकोंके लिअे तकली ही पहली सीढ़ी है। बालकोंको तकलीमें आनन्द आता है। वह फिरकनी और भौंरेकी बहन है। चरखेकी अपेक्षा तकली पर आसानीसे हाथ जम जाता है। और जिसका तकली पर हाथ जम गया अुसके लिअे चरखे पर हाथ जमाना बायें हाथका खेल है। लेकिन चरखे पर हाथ बैठ जानेके बाद तकली पर हाथ बैठाना अितना आसान नहीं है। क्योंकि अुसमें जबरदस्ती मन लगाना पड़ता है। व्यवहारकी दृष्टिसे देखें तो सबको चरखे देना और अुतनी जगहकी व्यवस्था करना कठिन है। अिसके अलावा, छोटे

बाल्कोको चरखे तैयार करके देने पडेंगे। माल टूटे या बिगड़े तब अुसे सुधारनेके लिअे बालकोको दूसरेकी मदद चाहिये। यानी वे परावलंबी रहेंगे। तकली तो स्वयं भी बना सकते हैं। वैसा करनेमें अुन्हें खेल और काम दोनों मिलेंगे। दो कामोंके बीचके समयमें खेतमें, घरमें, सभामें जहा भी चाहो तकली चलाओ जा सकती है। यदि शिक्षक पाच मिनटके लिअे बाहर जाय तो अुतनी देरके लिअे चरखा खोल कर चलानेका बालकोका मन नही होगा, लेकिन तकली तो वे तुरंत ही निकाल कर चलाने लगेंगे।

अिसके अलावा, अिस प्रश्नके पीछे यह विचार मालूम होता है कि तकली कुछ दिनके लिअे है और चरखा हमेशा रखनेकी चीज है। यह भूल है। तकली और चरखा दोनो खादीके कार्यसाधक हैं और दोनोका अुसमें सदाका स्थान है। वस्त्रस्वावलंबनके लिअे चरखेका ही होना जरूरी नही है। मजदूरी पर कातनेवालेके लिअे चरखा अनिवार्य माना जायगा। लेकिन अुसमें तो शायद वर्तमान चरखेका स्थान मगन चरखा ले सकता है। सादे चरखेके और मगन चरखेके अुत्पादनमें बड़ा फर्क तो रहेगा ही। अुसी प्रकार तकली और चरखेके बीच भी रहेगा। फिर भी, तकलीकी जो गति आज सिद्ध हुअी है वह अितनी तो है कि अुसे वस्त्रोत्पादक यंत्रके रूपमें तुच्छ नही कहा जा सकता। तकलीका कुशल कतवैया चरखेके साधारण कतवैयेको स्पर्धामें हरा सकता है। विनोबा तकलीको जो वस्त्रपूर्णा कहते हैं, वह कोअी अुनका तकलीके लिअे पागलपनकी हद तक पहुचा हुआ अुत्साह नही है, बल्कि अेक गणितशास्त्री और शिक्षाशास्त्रीके अनुभवोंका निचोड़ है।

हमारी शिक्षाका अेक दोष यह है कि हम दाहिने हाथसे या बायें हाथसे काम करनेवाले बन जाते हैं। वह हमें दोनो हाथोंसे काम करनेकी आदत नही डालती। यह दोष तकलीको दोनो हाथोंसे चलानेका अभ्यास करनेसे दूर हो जायगा। तकली पर गुजरातने पूरा ध्यान नही दिया, यह मुझे ठीक नही मालूम होता।

तकलीको जाघ पर घुमानेमें जाघको खुली रखना पड़ता है। वह कुछ लोगोंको सभ्यताकी दृष्टिसे अच्छा नहीं लगता, अैसा मैंने सुना है। यह तरीका अनिवार्य तो नहीं है, परन्तु यदि अनिवार्य भी हो तो क्या? जिस देशमें गरीबीके कारण चौबीसो घण्टे जाघ खुली रखकर स्त्री-पुरुष दोनोंको जीवन बिताना पड़ता है, वहां यदि कताअीके समय चड्डी या धोती अूची चढ़ानी पड़े, तो अुसमें शर्म किस बातकी? व्यायामशालामें क्या करते हैं? तैरनेके समय क्या करते हैं? अिससे यही मालूम होता है कि अभी हमारी दृष्टि देहातकी ओर नहीं मुड़ी है। हमें अभी अपने आसपास सफेदपोश वर्ग ही घिरा दिखाअी देता है। लेकिन सूरत जिलेमें तो सफेदपोश वर्गोंकी स्त्रियां भी कछोटा लगाकर समाजमें घूमती-फिरती हैं। सभ्यताके अैसे गलत खयाल हमें छोड़ देने चाहिये।

५. अुद्योगके समयमें हमें काम पर ही ध्यान रखना चाहिये। अिसमें शक नहीं कि अुस समय दूसरे विषय पढ़ानेका लोभ रखनेसे काम बिगड़ता है या अुद्योगकी गति कम होती है। परंतु अुद्योगसे संबंध रखनेवाली बातें या बहुतेरी जानकारी अुसी समय बतलाअी जा सकती है। जाकिरहुसेन कमेटीने कहा है कि अुद्योगसे संबंधित शास्त्र अुद्योगके समय ही सिखाया जाय। यह तो स्पष्ट है कि अिससे प्रत्यक्ष कामका समय अुतना कम होगा। अुद्योगके कुछ काम अैसे अवश्य होते हैं, जिनके साथ याद किये हुअे गीत-कविता वगैरा चलाये जा सकते हैं। कोअी काम अैसा न होना चाहिये, जिसमें अुद्योगके काममें आंख हटानी पड़े। अमुक समय तो केवल मौन रखनेका ही नियम होना चाहिये।

६. अैसा नहीं हो सकता कि कांग्रेसी सरकार राष्ट्रीय साहित्य स्कूलमें न आने दे। अुसकी मांग कीजिये।

७. शालामें सजा — यानी छड़ी या तमाचे मारना, चिमटी भरना, अंगूठे पकड़वाना वगैरा — की मनाही होनी चाहिये। यह हो सकता

है कि किसी लड़केको सुधारनेकी शिक्षकोमें ताकत न हो। अुसे शालामे निकाल देनेका प्रसग भी आ सकता है। लेकिन सजाका रास्ता अख्तियार करना अुचित नही है।

८ वालकको घरके लिअे अभ्यास देना मै कुछ अंशमें आवश्यक मानता हू। अुसे स्वाध्यायकी आदत पड़नी चाहिये। अलवत्ता, वालकके सारे वोझका ध्यान रखकर ही यह होना चाहिये। वालकने घर पर अभ्यास किया या नही, अैसी चिट्ठी अुससे मागनेका तरीका ठीक नही है। अुसमें झूठ ही वोलना पडता है।

९ वुनियादी शिक्षाका अभ्यासक्रम आसान है या कम है, यह कहना ठीक नही है। वह लगभग अग्रेजी-रहित मैट्रिकके वरावर है। अुलटे, सभावना यह है कि वह सात वर्षमें पूरा न किया जा सके। अतः अुसे पूरा करनेके लिअे यदि अवधि वढानी पड़े, सातके वदले आठ या नौ वर्ष करने पडें, तो अुसमें मुझे कोअी आपत्ति नही है।

१०. वुनियादी शिक्षा जहा समाप्त होगी, वहासे माध्यमिक शिक्षाके पाठ्यक्रमके वारेमें विचार करना होगा। माध्यमिक शिक्षा यहासे आरभ होनी चाहिये, अैसा पहलेसे निश्चित करके वुनियादी शिक्षाको वहा तक लानेका यह अुलटा तरीका कैसे चल सकता है? लाखो वालकोको सात वर्ष तक पढनेके वाद ससारमें प्रवेश करना होगा। अुनके लिअे किस प्रकारकी और कितनी शिक्षा अनिवार्य और संभव है, अिसका विचार करके जो पाठ्यक्रम वनाया जाय वह वुनियादी शिक्षा है। जिन्हें आगे पढना हो वे वहासे आगे वढें, और अुनकी शिक्षाकी योजना वनानेवाले यह ध्यानमें रखकर अुनका पाठ्यक्रम तैयार करें कि वे कितना पढकर आये हैं।

११. सारी प्रजाके वालकोको छात्रालयोंमें नही रखा जा सकता। यह अिष्ट भी नही है। अुत्साही और अच्छे शिक्षक अितना कर सकते हैं कि अमुक समयको छोडकर शेष समय विद्यार्थी शालामें रहें; वहीं सोयें। परन्तु अैसा अनिवार्य कर देनेसे लाभ नही होगा। जिसके

विपरीत, अैसा नियम वनाना भी आवश्यक हो सकता है कि वालकोको रहने-सोनेके लिअे शालामें वुलानेके पहले शिक्षकको अिजाजत लेनी चाहिये। क्योंकि खेदजनक सत्य यह है कि कभी-कभी शिक्षक वालकोको कुमार्ग पर भी ले जाते हैं। अिससे शिक्षकको अैसी अिजाजत देनेके पहले जाच-पडताल करना जरूरी होगा।

१२. धार्मिक शिक्षाके वारेमें 'हरिजनवंधु' में जो लेख छप चुके है वे आप देख लें। धार्मिक वृत्ति शिक्षकके जीवनसे पैदा होती है। अुसमें प्रार्थनाका स्थान है। परंतु प्रार्थना धार्मिक वृत्तिसे हो तो ही। प्रार्थना अैसी रखी जाय जो सभी समझदार आदमियोको मान्य हो। जिन्हें धर्मके नाम पर झगड़े ही करने हो अुन्हें सतुष्ट नही किया जा सकता। भिन्न-भिन्न त्यौहार मनानेसे भिन्न-भिन्न धर्मोके वालकोको अपने धर्मकी खास-खास विशेपतायें जाननेको मिलती हैं। अिसमें शिक्षक अुदार वृत्तिवाला और सव धर्मोके प्रति आदरभाव रखनेवाला होना चाहिये। तभी वह विद्यार्थियोमें सच्ची धार्मिक वृत्तिका विकास कर सकेगा। नही तो वह अुनमें सकुचित धार्मिक अहंकार वढ़ायेगा।

१३. सांप्रदायिक झगड़ोकी अपेक्षा ग्रामशिक्षकके सामने दल-वन्दीके झगडोंका प्रश्न विशेप महत्त्व रखता है। शिक्षक किसी अेक दलमें मिल जाता है और फिर या तो वह अुस दलका शकुनि वनता है या अुसके हाथका खिलौना। अिसमें से कभी कभी वह दो दलोको लड़ाकर या अुनके वीच समझौता करानेवाला मध्यस्थ वनकर अपनी कमाअी वढाता है। शिक्षकको किसी झगड़ेमें तभी हाथ डालना चाहिये जव वह दोनो दलोंमें समाधान करा सके; नही तो अुसे दोनो दलोंसे अलग ही रहना चाहिये।

१४. व्यसनी शिक्षक विद्यार्थीके व्यसन नही छुड़ा सकता, सिर्फ अुन्हें सावधान कर सकता है। व्यसन न छोड़ सकनेवाला शिक्षक भी अपनी निर्वलता वतलाकर विद्यार्थीको अुपदेश दे। अुसमे कितनी सफलता मिलेगी यह नही कहा जा सकता।

१५ जिन गावमें वुनियादी शिक्षा दाखिल की गअी हो, अुस गावका कोअी आदमी यदि अपने वालकको पुरानी शिक्षा ही देना चाहता हो, तो अुसे जहा पुरानी पद्धतिकी शाला हो वहीं अपने लड़केको भेजना होगा। जब तक दोनो तरहकी शालायें चलती होगी तभी तक अैसा हो सकेगा। वातावरणको अनुकूल वनानेका काम काग्रेस समितियोका भी है। वे आपकी सहायता जरूर करेंगी, अैसी अपेक्षा रखनेका आपको अधिकार है।

१६. प्रतिस्पर्धा और पारितोषिकको जितना कम स्थान दिया दिया जाय अुतना ही अच्छा होगा। लेकिन अिसमें शका है कि अिन्हें सजा जितना ही वुरा कहा जा सकता है या नहीं। लालच पैदा करनेके लिअे नहीं, वल्कि कद्र वतलानेके लिअे पारितोषिक जैसी चीजका कुछ स्थान हो सकता है। अुत्साह वढ़ानेकी दृष्टिसे भी प्रति-स्पर्धायें रखी जा सकती हैं। जैसे खेलोमें होता है, वैसे काममे भी हो सकता है। पारितोषिक देनेमें विवेक होना चाहिये। कद्रके रूपमें केवल धन्यवादका पत्र भी दिया जा सकता है, और जहां गरीवी हो वहा अुपयोगी साधन भी दिये जा सकते हैं।

१७ प्र०—वर्धा-योजनाकी शालाकी सफलताका माप-दण्ड क्या हो?

अु०—अुसमें अुद्योग और शिक्षा दोनोकी छूत लगेगी। वालकको जो वातें शालामें करनी या पढनी होगी, अुन्हें वह घर और पडोसियो तक पहुचावेगा। यानी चरखेका प्रवेश अुसके गांवमें भी होगा। शालामें हुअी पढाअी अुसके दादा-दादीको भी मिलेगी। वुनियादी शालाका वालक दादी मासे जो वातें सुनेगा अुनके वदलेमें अुन्हें शालाकी वातें सिखाने लगेगा। जो सफाअी शालामें रखनी या करनी होती है, वही सफाअी वह अपने घरमें भी करेगा। गावमें अुद्योग वढेंगे; स्वावलंबन वढेगा; गावके खर्चकी अपेक्षा आय वढ़ेगी।

शाला छोडते समय विद्यार्थीमें अितना आत्म-विश्वास आ जाना चाहिये कि अब वह दुनियामें अपने पाव पर खडा रहकर जीवन विता सकेगा। यदि अुसे ज्यादा पढ़नेकी अिच्छा होगी तो अुनमें अपने वल पर वड़े विद्यालयमें भरती होनेका साहस होगा। अिसके अलावा अुसकी नागरिक वृत्तिका अच्छी तरह विकास हुआ होना चाहिये। नागरिक वृत्ति यानी जिस मानव-समाजका वह अग है अुस समाजके प्रति अपने सव धर्मोका भलीभांति पालन करनेकी वृत्ति। अिसके मूलमें हिंसक सस्कृतिकी जगह अहिंसक सस्कृति पैदा करनेकी भावना है। हमें अैसी संस्कृति पैदा करनी है, जिसमें वहुतोंके हितोंका हनन करके कुछ ही वर्गोमें ज्ञान, कला और वैभवकी वृद्धि करनेकी अपेक्षा सभी वर्गोमें अुनका प्रचार हो और अूच-नीचकी भावनाकी जगह सवमें समताकी भावनाका विकास हो। यह लक्ष्य जितने अंशोंमें सिद्ध होगा, अुतने ही अंशोंमें वुनियादी शिक्षा सफल मानी जायगी।

हरिजनवधु, १६–४–१९३९

२

विद्यार्थी जीवनकी दुरवस्था*

प्र० — आजका विद्यार्थी जीवन छिन्न-भिन्न और विकृत हो गया है। आपकी रायमें अुसके कारण और अुपाय क्या है?

अु० — प्रश्न परसे मुझे यह मान लेना चाहिये कि यह प्रश्न पूछनेवाले विद्यार्थी अैसा समझते है कि अुनका जीवन छिन्न-भिन्न हो गया है। शायद आपमें सभी अिस खयालके न हो, परन्तु कुछ लोग होगे। कुछ हद तक यह बात सच भी है। आज न केवल विद्यार्थियोका जीवन छिन्न-भिन्न हो गया है, बल्कि सारे हिन्दुस्तानका जीवन छिन्न-भिन्न हो गया है। संसारमें अनेक नये अन्वेषण हो रहे हैं, फिर भी अशाति और जुल्म बढते जा रहे हैं। हमारे देशमे हमारा समाज और जीवन जो छिन्न-भिन्न हो गया है, अुसका कारण स्पष्ट है, और वह है हमारी पराधीनता। यह पराधीनता अिसलिअे आअी है कि हमने सच्चे धर्मका नाश कर दिया है। सच्चे धर्मके नाशसे सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक सभी तरहसे हमारी अवनति हो गअी है और हमारा जीवन अव्यवस्थित हो गया है। राजनीतिक अवनतिसे परतत्रता आअी और अुसके बाद अनेक अनर्थोकी परपरा चली आअी है। अिस स्थितिसे मुक्त होनेके लिअे हमें जहासे धर्मका ह्रास आरभ हुआ है वही पहुचना चाहिये। अर्थात् धर्मका सशोधन करना होगा। धर्मके सशोधनसे हमारे समाज और जीवनका शोधन होगा। मै यहा धर्म शब्दका अुपयोग 'रिलिजन' के अर्थमें नही, बल्कि अधिक विशाल अर्थमें कर रहा हू। धर्मका अर्थ है वह वस्तु या वह जीवन-व्यवस्था जो मानव-समाजको अेक विशाल कुटुम्बमें अेकत्रित कर देती है, अुनमें विशालताकी भावना

* रविवार, ता० २९ नवम्बर, १९३६ को शामके चार बजे विद्यार्थी-संघके आश्रयमे गूजरात विद्यापीठमें हुअी प्रश्नोत्तरी प्रकरण २ से ६ तक।

पैदा करती है। यही धर्मका लक्षण है। संकुचितताको धर्मका लक्षण नहीं कहा जा सकता। जो धर्म मनुष्यमें संकुचितता पैदा करे और समाजकी अैसी रचना करे जिससे मनुष्य-मनुष्यमें भेद पैदा हो, मनुष्य-का व्यक्तित्व भी वैसा ही वन जाय, वह धर्म नही वल्कि धर्मका आभास मात्र है। मेरे विचारसे हिन्दुस्तानमें हमने धर्मके वारेमें खूब विचार किया है, तत्त्वज्ञानमें भी हम खूब गहरे अुतरे हैं, फिर भी अिन सबके कारण हम व्यक्तिवादी वन गये हैं। हमारी हरअेक प्रवृत्तिका ध्येय, फिर वह आध्यात्मिक प्रवृत्ति हो या आर्थिक, व्यक्तिगत लाभ हो गया है। मोक्षका विचार भी खुद अपने लिये ही किया जाता है। 'आत्मार्थे पृथ्वी त्यजेत्' में भी हम स्वार्थसे ही प्रेरित होते हैं। अिस प्रकार धर्मका ध्येय व्यक्तिगत हो जानेसे धर्म संकुचित हो गया। अिससे समभावका, जो धर्मकी आत्मा है, विस्तार होनेके वदले विषमता पैदा करनेवाली धर्म-परम्परा आरंभ हो गअी। अिसका सीधा परिणाम यह निकला कि समाज और राज्य-व्यवस्थामें सच्ची वस्तुका ह्रास होता गया और सड़ाव पैदा हुअी। अिस अवनत दशामें से निकलकर फिर अुन्नति करनेके लिअे व्यक्तिगत नहीं, वल्कि सामूहिक जीवन वितानेकी आदत डालनी चाहिये।

परंतु यह तो सारे समाजकी सामान्य वात हुअी। विद्या-र्थियोंका जीवन छिन्न-भिन्न होता जा रहा है, अुसकी जड़में विचार करने जैसी अेक दूसरी चीज है। आज विद्यार्थी जिनसे संस्कार ग्रहण करते हैं, वे अुनके गुरु हैं। विद्यार्थियोंके गुरु आज कौन हैं, अिसका निरी-क्षण करने पर मुझे दो गुरु दिखाअी दिये हैं· अेक तो पश्चिमके लेखक और दूसरे नाटक-सिनेमाके नट-नटी। आजके वहुतेरे रीति-रिवाज सिनेमासे ही सीखे जाते हैं। आजके शरीर-मंडन और सामाजिक स्वतंत्रता तथा मर्यादाकी वातें रंगभूमिसे ही ली जाती हैं। हमारे जमानेमें भी यह था, परंतु अुस समय रंगभूमिका अितना विकास नहीं हुआ था। आज तो वह वहुत ही आगे वढ़ गअी है।

अिसके अलावा, अुसका पोषण करनेवाली फिलसूफी और साहित्यका प्रवाह भी बहता ही जा रहा है। विशेष ध्यानमें लेने जैसी बात तो यह है कि विद्यार्थीके आसपासकी सारी प्रवृत्तियां अुस पर असे संस्कार डालती है कि बचपनसे ही भोगके प्रति अुसकी अभिरुचि बढ़े। अुद्योग-युगका जो कुछ भी विकास हो रहा है, अुस सबकी जडमें यह मान्यता है कि मनुष्यका सर्जन भोग भोगनेके लिअे ही हुआ है। धर्म-ग्रथोंमें लिखा है कि अीश्वरने सब कुछ रचकर मनुष्यको सौंप दिया है, अिसलिअे मनुष्यने मान लिया कि यह सब अुसके अुपभोगके लिअे है। यह मान्यता किसे रोचक न लगेगी? मनुष्यको रोचक लगी, अिसलिअे अुसे यह मान्यता पसन्द आअी।

अत. वस्तुस्थिति यह है कि जो मुहसे त्यागकी बातें करते है अुनका जीवन भी भोगकी तरफ खिंच रहा है। मनुष्यका निश्चय-बल और सयम-शक्ति अितनी घट गअी है कि संयममें स्थिर रहनेकी अपेक्षा भोगमें फिसलनेकी तरफ अुसका मन अुसे खींच ले जाता है। शाला-महाशालाओंमें खूब पढनेके बाद भी यही स्थिति रहती है, अिसलिअे वह चुपचाप अुस परिणामको सहन करता है। अिसलिअे जब भोग अुन पर आक्रमण करता है, तो मन निर्बल होनेसे वह हार जाता है। अिस स्थितिसे छूटनेके लिअे अिस प्रकारकी संस्कार-प्राप्तिसे ही छूटना चाहिये। किन्तु वह कठिन मालूम होता है, क्योंकि हमारी रोटीके लिअे भी हमें यह शिक्षा लेनी ही पडती है।

दूसरी ओर विद्यार्थी पश्चिमके समृद्ध देशोंकी जीवन-पद्धतिका अनुकरण करनेका प्रयत्न करते हैं। गरीब आदमी धनवानकी नकल करता है तो वह अपनी सादी-सी झोंपडी भी खोता है और अुसे महल भी नहीं मिलता। पश्चिमके समृद्ध देशोंने भोगका जीवन बितानेके लिअे अितने साधन और सुविधायें पैदा की है कि अुनके कारण अुनकी शारीरिक शक्ति और भोगशक्ति टिकी रहती है। लेकिन अिस भोगी जीवनकी छूत जब फैशनके रूपमें गरीबको लगती है तब वह

अुससे वच नही सकता। अमीरको क्षय हो जाय तो वह चाहे जो सावन जुटाकर अुससे वच सकता है; परंतु यदि गरीव अनुकरण करके क्षयका शिकार हो जाय तो अुसे मरना ही होगा। अिस प्रकार युरोपकी समृद्ध प्रजाके मौज-शौक, भोग-विलासको आदर्श वनाकर अुसका अनुकरण करेंगे तो हमारी हार निश्चित है। अुनके पास अपार कृत्रिम सावन हैं। किन्तु जहां दूव जैसी चीज भी नसीव न होती हो, वहाकी प्रजा अुनके जैसे विकारोका सेवन करे तो अुसका नाश ही होगा। मतलव यह कि यदि आजके विद्यार्थी जीवनको अुन्नत और विकसित वनाना हो, तो अुसका यही रास्ता है कि भोग-विलास और मौज-शौकका जीवन छोड़कर हम सयमी जीवन वितावें। यदि विद्यार्थी संयमी न वनें तो देशकी परावीनता भी दूर नहीं हो सकती।

हरिजनवंवु, २७-१२-१९३६

३

धंधा या विकास?

प्र० — आपने 'हरिजनवंवु' में लिखा है कि विद्यार्थियोको अपना भावी धंधा आजसे ही निश्चित कर लेना चाहिये। परंतु क्या अिससे विद्यार्थीका सच्चा विकास रुक नही जायगा?

अु० — यहा विद्यार्थीके विकासका सामान्य अर्थ करें तो मैं कहूंगा कि वह नही रुकेगा। आज जो शिक्षा दी जा रही है अुससे वुद्धिका विकास नहीं होता। वुद्धिके विकासका प्रमाण और कसौटी क्या है? वुद्धि यानी निर्णय करनेकी शक्ति। विद्यार्थीको किस तरह रहना चाहिये, किस तरह जीना चाहिये, जीवन क्या है — अिन सव वातोमें निर्णय करना आ जाय तो कहा जा सकता है कि अुसने वुद्धिका विकास किया है। मैट्रिक पास होनेके वाद विद्यार्थी यह तय

नहीं कर पाता कि अब क्या किया जाय। अुस अनिश्चिततामें वह तय करता है कि चलो, चार वर्ष और निकालें, फिर अिस बातका निर्णय करेंगे। अितना पढ लेनेके बाद भी वह यह निश्चय नहीं कर पाता कि अब क्या करूंगा। अिस प्रकार अनिश्चिततामें ही जीवनका अुत्तम समय बिगाडनेके बाद भी जब हम अनिर्णयमें ही रहते है, तब कैसे कहा जा सकता है कि हमने बुद्धिका विकास किया? जो किसान खेती करता है वह जानता है कि खेतकी जुताअी कैसे की जाय। मोटर चलानेवाला भी जानता है कि अुसे किस रास्ते जाना है। लेकिन पढे-लिखे होने पर भी हमें यह ख़याल नहीं होता कि हमें किस रास्ते जाना है।

बात यह है कि स्कूल-कॉलिजोंमें हम बुद्धिकी नहीं बल्कि तर्क-शास्त्रकी शिक्षा लेते है। और तर्कसे पूर्वपक्ष और अुत्तरपक्षकी रचना करनेकी शक्ति ही बढती है, सिर्फ विचारोंको व्यवस्थित रूप देनेकी कला हाथ आती है। जैसे कोअी पिंगलशास्त्री विविध अक्षरों या मात्राओंको जमा कर छन्दकी रचना कर सकता है, जैसे कोअी संगीतशास्त्री विविध स्वरोंसे संगीतकी योजना कर सकता है, अुसी प्रकार हम शिक्षाके द्वारा तर्कको व्यवस्थित करनेकी कला प्राप्त करते है। मुझे कुछ बी० अेस-सी० के विद्यार्थी भी अैसे मिलते है, जिन्होंने विज्ञानमें भी केवल तर्कका ही ज्ञान प्राप्त किया होता है। मतलब यह कि शालामें बुद्धिकी शिक्षा दी जाती है, यह मानना भ्रम है। वह भ्रम हमें निकाल देना चाहिये और समझना चाहिये कि यह शिक्षा बुद्धिकी नहीं बल्कि तार्किक शिक्षा ही है। केवल तर्ककी शिक्षासे निश्चय करनेकी शक्ति घटती जाती है, और आत्मबल जैसी कोअी वस्तु हममें नहीं रहती। जीवनके सर्वोत्तम काल, विद्यार्थी जीवन, के पहले पच्चीस वर्ष यदि हम बिना किसी निर्णयके बितायें, तब यदि बादके पचास-पचपन वर्षोंमें — सौ वर्ष तो हरगिज नहीं — पहलेसे सरदार बादर बनें तो अुसमें आश्चर्य ही क्या?

अधिकतर लोग मेहनत करके खानेकी स्थितिमें होते हैं। मेहनत करके खाना जीवनका अेक बड़ा सत्य है। अिसलिअे यदि पहलेसे ही जीवनका मार्ग निश्चित हो जाय, तो अुससे निश्चयीकी संस्कारिता बढ़ेगी। अैसा मनुष्य हर चीजमें अपने विकासकी दृष्टि रखेगा। वह प्रत्येक कार्यमें सावधानी रखेगा। जिसे यही मालूम न हो कि कहां जाना है, वह किसमें से क्या ले सकेगा? अिसलिअे मुझे लगता है कि बचपनसे ही विद्यार्थीको यह निश्चय करा देना चाहिये कि अुसको क्या बनना है। सारे संस्कार जीवनके आसपास गुथे होने चाहियें। अुन संस्कारोंसे भले वह ललित कलाकार बने या औद्योगिक कारीगर, परंतु वह भला नागरिक तो होगा ही। दक्षिण अफ्रीकाका प्रेसिडेन्ट जनरल बोथा कुशल गड़रिया भी था। जनरल स्मट्सके बारेमें भी यही कहा जाता है। अिसका अर्थ यह हुआ कि कोअी मनुष्य मोची होने पर भी कांग्रेसका अध्यक्ष हो सकता है। मोची भी नागरिक होगा। वही सच्चा नागरिक है, जो किसी अुपयोगी धंधेमें कुशल है। जिसमें किसी भी अुपयोगी धंधेकी निश्चितता हो और जो अपनी कुशलता और योग्यताका अुपयोग समाजके हितके लिअे करना जानता हो, वह सच्चा नागरिक है।

यहां मैं तीसरे प्रश्नको भी मिला देता हूं। क्योंकि अुसमें भी यह पूछा गया है कि "हिन्दुस्तानकी आजकी परिस्थितिमें विद्यार्थियोंको कुशल कारीगर बनाने पर विशेष जोर दिया जाय या अुन्हें आदर्श नागरिक बनानेका प्रयत्न किया जाय?"

अच्छा नागरिक बननेके लिअे किसी भी धन्धेकी निश्चितता आवश्यक है, क्योंकि जिसके पास धन्धा नहीं वह बिना वर्णका है। कोअी भी निश्चित ध्येय न रखनेवाला वर्णहीन — बगैर धन्धेका — आदमी नागरिक नहीं हो सकता। अिस मामलेमें विद्यार्थीको पहलेसे ही निश्चितता होनी चाहिये। आज प्राथमिक शिक्षामें लिखना, पढना और हिसाब करना सिखाया जाता है। ये तीन काफी नहीं होते, अिसलिअे

अिनमें मैं चौथा और जोड़ता हूं कि अुसे 'मैकेनिक' भी होना चाहिये। जिसे सादे औजारोंका भी अुपयोग करना नहीं आता, अुसने प्राथमिक शिक्षण नहीं लिया अैसा समझना चाहिये। यानी औजारोंका सादा अुपयोग प्राथमिक शिक्षाका अंग माना जाना चाहिये। हर विद्यार्थीको कारीगर — बुद्धि चला सके अैसा मजदूर — बनना आना चाहिये। अिस मजदूरीमें मैं चार वस्तुओंकी शिक्षाको महत्त्व देता हूं : बढ़अी-गिरी, लुहारी, खराद-काम और 'फिटर' का काम। अिन चारकी कुशलताके बिना मैं प्राथमिक शिक्षाको अधूरी मानूंगा। देशकी राज-नीतिक परतंत्रता और समाजकी अव्यवस्थाके कारण आज बेकारी सबके मार्गमें बाधक होगी। लेकिन भविष्यमें जिसके पास कारीगरी होगी, अुसके लिअे भरण-पोषणका रास्ता आसान हो जायगा।

हरिजनबन्धु, ३-१-१९३७

४

अुद्योग या शरीरश्रम ?

प्र० — विद्यार्थीको सर्वांगीण शिक्षा देनेके लिअे किसी खास अुद्योगका शिक्षण देनेके बदले यदि संपूर्ण शरीरश्रमवाला जीवन बिताना सिखाया जाय तो कैसा हो?

अु० — केवल शरीरश्रम काफी नहीं है। अुसके साथ अुद्योग न हो तो काम नहीं चल सकता। आज देहातमें शरीरश्रम तो सभी करते हैं, लेकिन वह सब काम बुद्धिहीन होता है। परम्परासे जिस प्रकार काम होता आ रहा है, अुसी प्रकारसे आज भी होता है। गांधीजीने मधुसूदन दासके शब्दोंमें अेक बार कहा था कि "हमारा देहाती जिस बैलको रास पकड़कर हांकता है, अुसीके जैसा बन गया है।" देहातोंमें योजना या बुद्धिपूर्वक मेहनत करनेका सलीका नहीं

होता। मतलब यह कि शरीरश्रममें भी कौशल चाहिये। अिसलिअे अुद्योगका शिक्षण छोड़ा नहीं जा सकता। विद्यार्थीको किसी भी अेक अुद्योगमें पारगत होना चाहिये। 'सर्वांगीण' शब्द आजके बहुतेरे Slogans — मोहक सूत्रों — जैसा है। 'संस्कारिता, कला, व्यक्तित्व आदिका विकास' शब्द बहुत बार निरर्थक-से लगते हैं। विकास तो अेकांगी ही हो सकता है। जिसका सर्वांगीण विकास हुआ हो अैसा तो केवल अीश्वर ही माना जा सकता है। वैसे हम तो देखते हैं कि कोअी भी शाला किसी अेक निश्चित वस्तुमें पारंगत बननेका शिक्षण देनेका दावा कर सकती है। सर्वांगीण विकास करानेवाली कोअी शाला हो ही नहीं सकती।

हरिजनबन्धु, ३-१-१९३७

५

धार्मिक शिक्षणकी दृष्टि

प्र० — शालाके अभ्यासक्रममें धार्मिक शिक्षण किस दृष्टिसे दिया जाना चाहिये?

अु० — किसी भी धर्मका सच्चा शिक्षण तो अैसा होना चाहिये, जिससे हमारे हृदय संकुचित नहीं, बल्कि विशाल बनें। हमने अेक महान सूत्र सीखा है 'अहिंसा परमो धर्मः'। मानवजातिको सुख-शांतिसे रहना हो तो मानवके प्राणोंके प्रति आदर बढ़ना चाहिये। आज मानवके प्राणोंके प्रति समाजमें आदर नहीं है। अहिंसा-धर्मी जैनोंमें भी परस्पर सिर फूटते हैं और धर्मके नाम पर कितने ही अनर्थ होते हैं। अिस सबकी जड़में बात यह है कि हमें यह सिखाया ही नहीं गया कि मनुष्य अवध्य है। कअी अदालतोंमें वैष्णव और जैन न्यायाधीश रहे होंगे। लेकिन अुनमें से किसीने भी अपने धर्मके कारण मानव-

हिंसाने अिन्कार किया हो अैसा जाननेमें नहीं आया। जैन राजाओंने भी युद्ध किया है। अिसका अर्थ यह हुआ कि जहांसे अहिंसाका आरंभ होना चाहिये था, वहांसे नहीं हुआ। हमने छोटे-छोटे जीवोंमें और वनस्पतिमें भी प्राण देखा, किन्तु मनुष्यको अिस दृष्टिसे नहीं देखा। आज तो युद्धके लिअे जानेवाली सेनाको धर्मगुरु पोप आशीर्वाद देते हैं। वैसे ही बहुतेरे धर्मगुरुओंको युद्धके प्रति तिरस्कार नहीं होता।

शिक्षण-क्रममें धार्मिक शिक्षाकी दृष्टि अैसी होनी चाहिये, जिससे मानव-प्राणके प्रति आदर बढे। आज हमने खाने-पीनेके बारेमें अहिंसाकी दृष्टि बढा ली है, किन्तु मानव-समाज हिलमिल कर रहे और दुश्मनी मिटे अिसमें अहिंसा-धर्म नहीं जाना। मछुआ मछली मारनेका धन्धा करता है, अिसलिअे अुसे नफरतसे अधम कहा जाता है, परन्तु मोती बेचनेका धन्धा अधम नहीं माना जाता। किसीको व्यवहारमें लूटने, चूसनेमें हिंसा नहीं मानी जाती, परन्तु असलमें वह हिंसा ही है।

अहिंसाका अर्थ है प्राणके प्रति आदर। अिसमें अन्य जीवोंके साथ मानव-प्राणका भी आदर आ जाता है। किन्हीं अनिवार्य संयोगोंमें आत्मरक्षा करते हुअे या दूसरी हिंसाको रोकते हुअे हिंसा हो, तो अुसे अपवाद माना जा सकता है। परन्तु धर्मके नाम पर जो झगडे होते हैं, अुनमें धर्म नहीं है। सहजानन्द स्वामीने आदेश दिया है कि स्त्री, धन और साम्राज्यके लिअे मनुष्यकी हिंसा न करनी चाहिये; अुसने धर्मके नाम पर भी मानव-हिंसाका निषेध जोडना आवश्यक है। और अैसी शिक्षा देनेकी आवश्यकता है। मनुष्यका वध न करनेकी बात स्वीकार कर लें तो धर्मकी सारी दृष्टि ही बदल जायगी।

हरिजनबन्धु, ७–३–१९३७

६

वर्ग-विग्रह बनाम अहिंसा

प्र०—आजकी सामाजिक अव्यवस्था वर्ग-विग्रहके द्वारा दूर हो सकेगी या अहिंसा और प्रेमके मार्गसे? अहिंसाकी शक्तिने मानवताके विकासमें कितना योग दिया है?

अु०—हम जब हिंसा करना आरम्भ करते हैं, तब यह मानो भूल जाते हैं कि हम अेक ही योनिके हैं। कुत्ते या भेड़ियोंने सामूहिक रूपमें अेक-दूसरेका नाश किया हो अैसा नहीं सुना। यह अलग बात है कि क्षणिक क्रोधमें पशु हिंसा करते हैं। परन्तु वे सामूहिक रूपमें लडाअी ही किया करते हों अैसा तो जंगलोंमें देखनेमें नहीं आया। परन्तु मनुष्य हिंसामें कुत्ते और भेड़ियेसे बढ जाता हैं। अिसीसे वह अपनी ही योनिके—मानवके—संहारके साधन जुटानेमें अपार सम्पत्ति और शक्ति खर्च करता है। आज करोड़ो रुपये खर्च करके संहारके साधन तैयार किये जा रहे हैं। वर्ग-विग्रहकी जड़में भी अैसा ही हिंसाका भाव है। क्योंकि वर्ग-विग्रहके सिद्धान्तके प्रचारमें मानव-मानवके बीच अनादरकी भावना पैदा करनेका प्रयत्न तो रहता ही है। सामाजिक या दूसरी अव्यवस्था दूर करनेका यह अिष्ट मार्ग नहीं है। व्यवस्थित रीतिसे विकसित किया हुआ प्रेमका मार्ग ही अिससे बढकर है। आज तक लड़ाअी, द्वेष तथा संहारके साधनोंके पीछे मनुष्यने अपार बुद्धि और धन बरबाद किया है। न जाने कितनी बुद्धि और पैसा खर्च किया होगा। परन्तु घरकी मां जिसे जानती है अुस प्रेमका—अहिंसाकी शक्तिका—व्यवस्थित रूपसे विकास करनेका प्रयत्न नहीं किया गया। किसी अीसामसीह, भगवान बुद्ध या गांधीजी जैसे व्यक्तियोंने ही अिसका प्रयोग किया है। संसारमें बन्दूककी मनुष्योंको मारनेकी शक्ति बढे अैसे सुधार अुसमें करनेके लिअे मनुष्यने

अपनी बुद्धि खूब चलाओ है, जब कि गाधीजीने कुछ ही वर्षोंकी अहिंसाकी साधनाने सत्ताके पैर अुखाड़ दिये है। अिन दोनोंमें किसकी शोध ज्यादा अच्छी मानी जायगी?

आज संहारके विविध साधन पैदा होते ही जा रहे है। अिस-लिअे मनुष्य मानने लगा है कि संहारके साधन अनन्त हैं। तब मैं पूछता हू कि प्रेम और सत्याग्रहकी शक्तिको क्यो न अनन्त माना जाय? गाधीजीने सत्य और अहिंसाकी शक्तिका नया प्रयोग किया और अिस मानव-बलको संसारमें अुज्ज्वल किया। अिसी प्रकार सच्ची निष्ठासे यदि दूसरे भी अिस काममें लगें, तो हम आगे क्यों नही बढ सकते? अहिंसा और प्रेमकी शक्तिका मनुष्यको पूरा अनुभव हो गया है और अुसका अन्त आ गया है, अैसा माननेके लिअे कौनसे कारण हैं? गाधीजीने जो कुछ बतलाया वह वहा पूरा हो गया, अैसा कैसे माना जा सकता है? आज यदि कोअी कहे कि अभी विविध प्रकारके यंत्र और बढ़ेंगे, तो अुसमें हमें आश्चर्य नही मालूम होता। किन्तु अुसी प्रकार यदि यह कहा जाय कि प्रेम और अहिंसाकी शक्तिका और भी अधिक विकास किया जा सकता है, तो अुन पर श्रद्धा रखना बुद्धिसे बाहरकी बात जान पड़ती है।

गांधीजीने जब अहिंसाका मार्ग अपनाया तो अुसके लिअे सशोधनका काम हाथमें लिया। दूसरोंने अैसे प्रयत्न कहां किये है? हमें यदि अहिंसाके रास्ते जाना हो, तो अुनसे अुलटा रास्ता हमारे लिअे बिल-कुल बन्द होना चाहिये। यदि हम अधूरी श्रद्धासे चलेंगे तो कुछ भी लाभ नही होगा। अहिंसाके मार्गमें जरा भी असफल हुअे कि हिंसाकी ओर चले, यह ठीक नहीं। अिससे तो कुछ भी काम न होगा। अहिंसामें कैसी-कैसी शक्ति भरी है यह जाननेके लिअे भी अुसके विरुद्ध दूसरे पहलूका हमें सर्वथा त्याग करना होगा।

अहिंसाकी शक्तिने मानवताके विकासमें जो योग दिया है, वह अितना बड़ा है कि अुसका मैं यहा पूरी तरहसे वर्णन नहीं कर

सकता। यदि अहिंसा-शक्तिके योगके बारेमें आपको कुछ अुपयोगी बातें जाननी हों, तो मैं आपको श्री नरहरिभाअी परीखकी अनुवाद की हुअी प्रिंस क्रोपाटकिनकी पुस्तक 'सहायवृत्ति'* पढ जानेकी सलाह देता हूं। जैसा कि डार्विनने कहा है, मनुष्य जातिने 'जिसकी लाठी अुसकी भैंस'के न्यायसे विकास किया है। यह सच है कि वह विकास परस्पर सहयोगसे हुआ है। यह बात आपको अुस पुस्तकमें मिलेगी। मैं मानता हूं कि वह पुस्तक हर विद्यार्थीको पढनी चाहिये। वह डार्विनसे सर्वथा भिन्न दृष्टिसे लिखी गअी है, और अुसे पढनेसे संघशक्तिके प्रति आदर बढ सकता है।

अहिंसाके विकासका माप अेक रीतिसे निकाला जा सकता है। मनुष्य-समाजने धीरे-धीरे अहिंसाकी ओर प्रयाण किया है, वह देखा जा सकता है। अुदाहरणार्थ, अेक समय अैसा था जब अपराधीको देहान्त दण्ड दिया जाता था। अिसके अलावा, छोटे-छोटे अपराधोंके लिअे अपराधीको काटोंमें जलाकर, पानीमें डुबोकर या पत्थरकी मारसे खतम कर दिया जाता था। तेलमें तलने और चमड़ी अुधेड़नेकी बातें भी कही जाती हैं। ये क्रूर प्रथायें आज नहीं रहीं। राज्यकी आज्ञासे भी अब यदि प्राणान्त दण्डकी सजा दी जाती है, तो अुसमें हमारा झुकाव अैसे तरीके खोजनेकी ओर रहता है कि मरनेवालेको कमसे कम पीड़ा हो। वैज्ञानिक या कसाअी लोग प्राणियोंकी हिंसा करते हैं अुसमें भी वे अैसा तरीका या साधन काममें लेते हैं जिससे प्राणी यातना सहकर न मरे। यद्यपि अेक ओर युद्ध-सामग्रीमें विषैले बम वगैराकी क्रूर पद्धतियां बढ़ती जा रही हैं, फिर भी नागरिक जीवनमें ये सब चीजें अहिंसाका विकास बतलानेवाली हैं। मनुष्यने हिंसा की है और आज भी करता है, फिर भी अुसमें अुसने शांति या कृतार्थताका अनुभव नहीं किया। क्योंकि अुसमें वैरभाव भरा

* नवजीवन द्वारा प्रकाशित गुजराती अनुवाद। कीमत १-४-०; डाकखर्च ०-३-०।

हुआ है। मनुष्यको स्वभावसे ही जीवोंका दु:ख घटानेमें सन्तोष मिलता है। अहिंसा-शक्तिने मानवताके विकासमें कितना योग दिया है, अिस पर आपमें से अितिहासके विद्यार्थी काफी छान-बीन करके अेक निबन्ध तैयार कर सकते हैं। यह सारा विषय बहुत ही रसप्रद और महत्त्वपूर्ण है। आपमें से किसीको अिस दिशामें प्रयत्न करना चाहिये।

हरिजनबन्धु, ७-३-१९३७

७

स्वतंत्रता और नियमन

अेक विद्यार्थीने नीचे लिखा प्रश्न पूछा है:

"हम स्वतंत्रतामें विश्वास करते हैं, फिर भी शालाओंमें विद्यार्थियोंसे व्यवस्थित काम करवानेके लिअे नियमनका बोझ क्यों लादा जाता है? यदि वे स्वतंत्र रूपसे काम न कर सकते हों, तो अुसका कारण क्या है? अुन्हें स्वतंत्र रूपसे काम करनेकी आदत डालना किसका फर्ज है?"

हम स्वतंत्रतामें विश्वास रखनेवाले हैं, अिसका अर्थ यह नहीं कि हम अराजकता या अव्यवस्थामें भी विश्वास रखें। देश आज जिस स्वतंत्रताके लिअे आन्दोलन कर रहा है, वह अेक खास प्रकारकी ही स्वतंत्रता है। हमारा प्रयत्न अैसी स्वतंत्रता पानेका है जिसमें देशके कारोबारमें विदेशियोंका हस्तक्षेप न रहे।

अिसके अुपरान्त हम यह चाहते हैं कि देशका कारोबार चलाते हुअे अमुक बातोंमें हर नागरिक तथा समाजको अपनी अिच्छाके मुताबिक चलनेकी स्वतंत्रता हो। अिन बातोंको छोड़कर अन्य बातोंमें नियमन न हो, अैसा कोअी भी समझदार मनुष्य नहीं सोचता। मतलब

यह कि स्वतंत्र हिन्दुस्तानमें भी व्यक्तियों तथा समूहों पर अनेक प्रकारके अकुश, अनिवार्य कर्तव्य आदि रहेगे ही।

जैसा देशमें, वैसा ही संस्थाओंमें भी — यानी स्कूलोंमें भी होगा।

'मुद्राराक्षस' के लेखकने स्वतत्रताकी अच्छी परिभाषा की है: स्वतंत्रताका अर्थ है अच्छे काम करनेकी स्वतंत्रता। गलत काम करनेसे, कर्तव्य-भ्रष्ट होनेसे, गड्ढेमें गिरनेसे जो नियमन रोकता है वह स्वतंत्रताका विरोधी नही है।

मतलब यह है कि व्यवस्थित समाज या सस्थामें कोअी नियमन न हो यह स्थिति कभी आ ही नही सकेगी। आज्ञा देने और माननेके कर्तव्य रहेगे ही। यदि सुधार हो सकेंगे तो वे आज्ञा करने, काम करवाने तथा व्यवस्था रखनेके तरीकोंमें होगे। अनगढ शिक्षक बेंतसे वर्गमें व्यवस्था रखनेका प्रयत्न करेगा, मध्यम शिक्षक विद्यार्थियोको लालच बतलाकर और अुत्तम शिक्षक कला और प्रेमके द्वारा वैसा करेगा। नियमन अखरे नही या अखरे तो कमसे कम अखरे, अितना ही किया जा सकता है।

फिर भी नियमन तो नियमन ही रहेगा। कभी न कभी तो वह अखरेगा ही। प्रेमका नियमन हो फिर भी आलसीको अखरे विना नही रहेगा; जड़ मनुष्यको भी अखरेगा; जिसे अपनी बुद्धिका अत्यंत गर्व हो, अुसको भी अखरेगा; और स्वच्छन्दी, व्यसनी, दुर्जनोको भी अखरेगा। वे तो कहेगे कि हमारी स्वतंत्रताका हनन हो रहा है।

शाला या समाजमें नियम-भगके लिअे पुराना अिलाज दण्डका है। जैसे शालासे दण्डकी प्रथा धीरे-धीरे अुठती जा रही है, वैसे ही हम आशा करे कि वह समाजसे भी अुठ जायगी। हो सकता है कि नियम भंग करनेवालोको किसी-न-किसी प्रकारके रोगी मानकर अुनका डॉक्टरी अिलाज करवानेकी व्यवस्था की जाय। परन्तु यह डॉक्टरी अिलाज भी सबके लिअे अनिवार्य होगा, अिसलिअे यह नही कहा जा सकता कि वह सबको पसद ही आयेगा। संभव है काममें आलसी

करनेवाले विद्यार्थी अस्पतालमें जानेकी अपेक्षा बेंतकी सजा ज्यादा पसंद करें।

बालक या बड़े स्वतंत्र रूपमें स्वेच्छासे अपना कर्तव्य पूरा नहीं कर पाते, अुसके कअी कारण हो सकते हैं; अुदाहरणार्थ, काम करनेकी आदतका अभाव, शारीरिक या मानसिक रोग, हृदय और बुद्धिकी जड़ता, कोअी खराब आदत, कोअी स्वार्थ। ये लोग स्वतंत्र रूपमें काम करने लगें, अिस ध्येयको सामने रखकर नियामकोंको काम करना चाहिये। अिस सम्बन्धमें किस प्रकारके अुपाय किये जायं, अिसका शास्त्र धीरे-धीरे बनता और विकास करता जा रहा है।

विद्यार्थियोंको अेक बात जान लेनी चाहिये: जबरन नियम पलवाना किसी भी शिक्षक या अधिकारीको पसंद नहीं होता। प्रेमके सिवा किसी दूसरी रीतिसे चलनेवाले नियामकको भी जबरदस्ती करनेमें कोअी आनन्द नहीं आता। नियम पालनेकी आवश्यकताके कर्तव्यमें से अुसे जो रीति सूझती है या आती है, अुसीका वह अमल करता है।

नियम तोड़नेवालोंको स्वतंत्र रूपसे काममें लगानेका कर्तव्य केवल नियामकोंका ही नहीं, बल्कि अच्छी तरह नियम पालनेवालों — यानी दूसरे विद्यार्थियों और नागरिकोंका भी है। अेक विद्यार्थी स्वतंत्र रूपसे काम न करे तो अुसे सुधारनेमें दूसरे विद्यार्थियोंको भी मदद करनी चाहिये।

'शिक्षण अने साहित्य', फरवरी १९४०

८

संस्कारी और असंस्कारी बालकोंका सहवास

प्र० — कभी माता-पिता अपने बालकोको गरीबोंके लड़कोंके साथ नही खेलने देते। क्या यह अुचित है? क्या अिससे बालक पर बुरे संस्कार पड़ते है?

अु० — यहां गरीब शब्द जितनी आर्थिक हीनता बतलाता है अुसकी अपेक्षा सांस्कारिक या जातिकी हीनता अधिक बतलाता है। साधारणतः माता-पिता अपनी जातिके गरीब बालकोंके साथ अपने बालकोंके मिलने-जुलनेमें आपत्ति नही मानते। परन्तु जिन्हे वे अपनेसे नीची जातिके या हलके संस्कारवाले समझते है, अुनसे नही मिलने देते।

परन्तु अधिकतर तो अिसमें मिथ्याभिमान ही रहता है। मिलनेवाले बालक किस स्वभावके हैं, अुसी पर सारी बात निर्भर करती है। बचपनमें मेरे पिताके अेक हमालका लड़का मेरा घनिष्ठ मित्र था। अुसके साथ हमालोंके दो-तीन और लड़के मेरे साथ खेलते थे। अुन लड़कोंने मुझे कभी बुरी आदतें सिखाअी हो अैसा मुझे याद नही पड़ता। हां, अुनका प्रेम मुझे अभी तक याद है। लेकिन जिन निकटके सगे-सम्बन्धियोंके लड़कोंके साथ मै खेला था, अुनसे तो मैंने बहुतसे दोष सीखे थे। अेकके साथ रहकर मैंने अुसे अेक-दो छोटी-छोटी चोरियां करनेमें भी मदद दी थी। बुरी आदतें सिखानेवाले अधिकतर तो अपने सगे-सम्बन्धियोंके या समान दर्जेके लड़के ही होते हैं। वह 'गरीब' का लड़का गंदी गाली देता तो मै समझता कि अुसकी जातिमें गाली देनेकी आदत है, अिसलिअे वह दे सकता है, पर मैं नहीं दे सकता। मै जब अुसे कहता कि भाअी, गाली नहीं देना

चाहिये तो वह मान लेता था। परन्तु जब सम्वन्धियोंके लडके गाली देते और मैं अुन्हें रोकने जाता तो वे कहते, वड़ा आया समझदारका वावा; तुझे अच्छा न लगता हो तो हमारे साथ खेलने न आया कर। वादमें तो खेलनेकी गरजसे मैं अुनकी गन्दी भाषा सहन भी करने लगा और अुसमें कुछ मजा भी लेने लगा। समान दरजेके वालकोंने मुझे जो कुसस्कार दिये है, अुनकी ओर यहा मैंने थोड़ा अिशारा किया है। वडोमें यह अन्धविश्वास रहता है कि अुनके और अुनके समान दरजेवाले वालकोमें कोअी दुराचरण हो ही नहीं सकते। परन्तु कुसंस्कार प्राय. समान दरजेके वालकोंसे ही फैलते है।

अिसलिअे अिसमें गरीव-अमीर या अूची-नीची जातिका भेद करना ठीक नही। हमारा लड़का कैसा है और अुसके साथी कैसे है, अिसका व्यक्तिगत अध्ययन करके ही यह निश्चित करना चाहिये कि साथियोंके साथ अुसे रहने देना अच्छा है या वुरा।

'शिक्षण अने साहित्य', अक्तूवर १९४०

गांधी अध्ययन केन्द्र